RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 58 अंक : 05 प्रकाशन तिथि : 25 अप्रेल कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 मई 2021

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

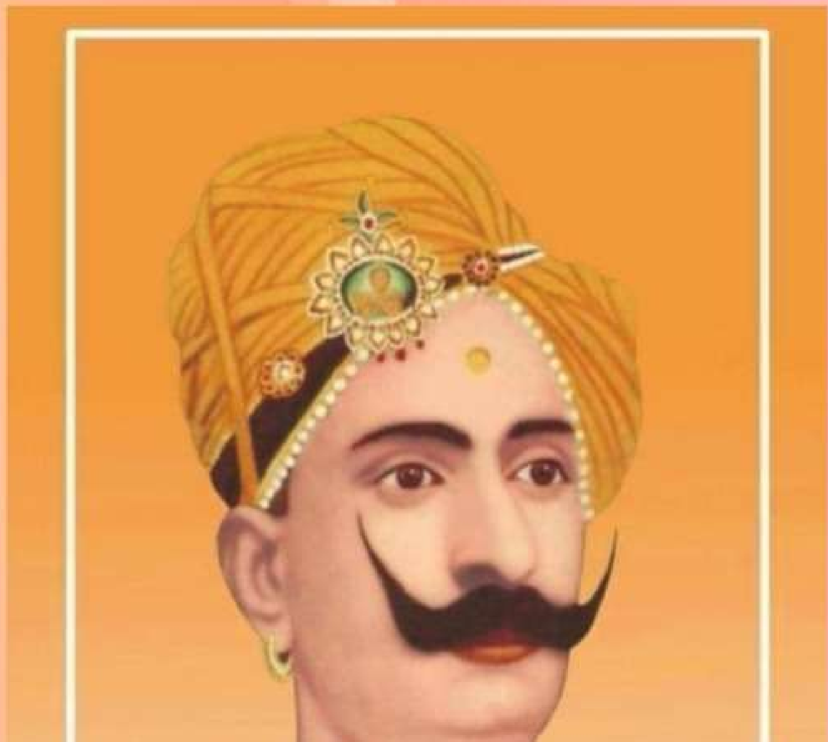

महान् क्रांतिकारी राव गोपाल सिंह जी खरवा

HITKARI & SWARAJ

हितकारी मेडिकोज

राजकीय चिकित्सालय के सामने, बाड़मेर-344001 राजस्थान

फोन : 02982226666

प्रो. पृथ्वी सिंह राठौड़

आजाद सिंह राठौड़

सिद्धार्थ सिंह राठौड़

-: सम्बंधित फर्म :-

हितकारी – स्वराज इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड

हितकारी प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

संघशक्ति

4 मई, 2021

वर्ष : 57 अंक : 05

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क – एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय – सूची

☞ समाचार संक्षेप	✍	04
☞ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
☞ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	06
☞ मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम	✍ श्री जयदयालजी गोयन्दका	08
☞ मेरी साधना	✍ श्री धर्मेन्द्रसिंह आम्बली	12
☞ महान् क्रान्तिकारी-राव गोपालसिंह-खरवा	✍ डॉ. भंवरसिंह भगवानपुरा	17
☞ व्यर्थ है जब तक प्राणों में......!	✍ स्व. सूरतसिंह कालवा	21
☞ वीर दलपतसिंह शेखावत	✍ श्री गिरधारीसिंह डोभाड़ा	23
☞ विचार-सरिता (एकषष्टि: लहरी)	✍ विचारक	25
☞ परमात्मा प्राप्ति के साधन	✍ रश्मि रामदेरिया	27
☞ पहला सुख निरोगी काया	✍ ब्रिगेडियर मोहनलाल (से.नि.)	29
☞ समय ही धन है	✍ श्री भँवरसिंह रेड़ी	32
☞ अपनी बात	✍	34

समाचार संक्षेप

संघ का हीरक जयन्ती वर्ष :

श्री क्षत्रिय युवक संघ का हीरक जयन्ती वर्ष चल रहा है। इसी क्रम में विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं। मार्च माह में आयोजित विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से हीरक जयन्ती सम्बन्धी जानकारी समाज बन्धुओं को अनेक स्थानों पर दी गई। रामदेवरा के दक्षिण में रूणिचा कुआ स्थित चिलाय माता मंदिर में 14 मार्च को बड़ा कार्यक्रम आयोजित हुआ। इसी दिन जयपुर शहर में प्रेमनगर में पारिवारिक स्नेह मिलन का कार्यक्रम हुआ तथा संघशक्ति कार्यालय में कार्यकर्ताओं की बैठक सम्पन्न हुई। इसी दिन दौसा जिले के मोचिंगपुरा गाँव में भी स्नेह मिलन कार्यक्रम आयोजित हुआ। जहाँ पूर्व में शिविर हो चुके हैं, वहाँ पहुँचकर सम्पर्क बनाने के संघ तीर्थ स्थल कार्यक्रम में चुरू जिले के रेड़ा ग्राम में, उदयपुर से बेणेश्वर धाम में तथा गुड़ा मालानी के उण्डखा में कार्यकर्ताओं ने सम्पर्क बनाया। मेवाड़ संभाग के कार्यकर्ताओं का स्नेह मिलन कार्यक्रम 13 व 14 मार्च को गुमानसिंहजी वलाई के फार्म हाउस पर आयोजित हुआ।

बीकानेर संभाग में दुलचासर गाँव के गाजण माता मंदिर में जन सम्पर्क कार्यक्रम 21 मार्च को सम्पन्न हुआ। उसी दिन कोटासर गाँव के भोमियाजी मंदिर में स्नेह मिलन कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। उदयपुर संभाग में प्रतापगढ़ के जालोदा में संघ तीर्थ दर्शन हेतु कार्यकर्ता पहुँचे। बालोतरा प्रान्त के लुदराड़ा गाँव स्थित पहाड़ेश्वर महादेव मंदिर में तीर्थ दर्शन कार्यक्रम हुआ। जयपुर के जामड़ोली में तथा मुरलीपुरा कॉलोनी स्थित माताजी मंदिर नानू नगर में स्नेह मिलन कार्यक्रम आयोजित हुए। मेवाड़-मालवा प्रान्त की दो दिवसीय (20 व 21 मार्च) कार्यकर्ता बैठक भीलवाड़ा जिले में धनोपमाता मंदिर में सम्पन्न हुई। चोहटन स्थित विरात्रा माता मंदिर में संघ तीर्थ दर्शन कार्यक्रम हुआ तो लाडनू-सुजानगढ प्रान्त के तेहनदेसर गाँव में संघ तीर्थ दर्शन हेतु कार्यकर्ता पहुँचे। 22 मार्च को देवराज जी का मंदिर बावकान तालाब सेतरावा में कार्ययोजना बैठक का आयोजन हुआ। शिव प्रान्त के मुंगेरिया गाँव में 28 मार्च को संघतीर्थ दर्शन कार्यक्रम में बड़ी संख्या में आस-पास के गाँवों से भी समाज बन्धु पहुँचे। इसी दिन जयपुर की राव शेखाजी शाखा में होली-मिलन कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

गुजरात के आणंद जिले के मोगर गाँव में 14 मार्च को स्नेह मिलन कार्यक्रम आयोजित हुआ। बड़ोदा शहर स्थित वाघेश्वरी फार्म पर स्नेह मिलन कार्यक्रम भी इसी दिन हुआ। भावनगर शहर प्रान्त का संघतीर्थ दर्शन कार्यक्रम भी 14 मार्च को सम्पन्न हुआ। 20 व 21 मार्च को पालीताणा में समग्र गुजरात की राजपूत संस्थाओं का स्नेह मिलन गोहिलवाड़ राजपूत समाज के तत्वावधान में सम्पन्न हुआ जिसमें संघ व हीरक जयन्ती की जानकारी केन्द्रीय कार्यकारी ने प्रस्तुत की। मोरचन्द प्रान्त के चूड़ी, बपाड़ा तथा लाकड़िया गाँव में संघतीर्थ दर्शन कार्यक्रम हुए। पालीताणा तहसील के बड़ेली गाँव में 21 मार्च को संघतीर्थ दर्शन हेतु कार्यकर्ता पहुँचे। भाल प्रान्त में सम्पर्क यात्रा का आयोजन धंधुका, पांची, सांठिड़ा, खरड़, कोटड़िया आदि गाँवों में हुआ। थराद तहसील के कुमारा, लेड़ाऊ, ईढाता गाँवों में सम्पर्क यात्रा की गई।

क्षात्र पुरुषार्थ ने 21 मार्च को पिलानी राजपूत छात्रावास में स्नेह मिलन कार्यक्रम का आयोजन रखा। इसी छात्रावास में पू. तनसिंहजी अपने पिलानी के अध्ययनकाल में रहते थे और यहीं श्री क्षत्रिय युवक संघ का विचार अंकुरित हुआ था। झुंझुनू व खेतड़ी में भी सम्पर्क किया गया। जैसलमेर में संघ कार्यालय तनाश्रम में मिटिंग रखी गई। भोपालगढ़ में तहसील स्तरीय बैठक सम्पन्न हुई। 21 मार्च को ही बाड़मेर में बैठक आयोजित हुई।

आहोर प्रान्त के पांचोटा में नागणेशी माता मंदिर प्रांगण में प्राथमिक प्रशिक्षण शिविर 11 से 14 मार्च तक सम्पन्न हुआ। सालासर के गौरीशंकर आश्रम में 11 से 13 मार्च तक शिविर सम्पन्न हुआ जिसमें क्षात्र पुरुषार्थ से जुड़े कार्यकर्ता सम्मिलित हुए।

आर्थिक आधार में आयु व फीस की छूट हेतु जो क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन ने संवैधानिक तरीके से अभियान चलाया, उसकी राज्य स्तर की नौकरियों हेतु सफलता से समाज में खुशी की लहर दौड़ी। लेकिन केन्द्रीय सेवाओं हेतु अभी यह छूट नहीं है। इसलिए अब यह अभियान प्रारम्भ किया गया है। जन प्रतिनिधियों के माध्यम से केन्द्र सरकार तक बात पहुँचाकर दबाव बनाने का कार्य प्रारम्भ किया गया है।

देश में फैल रही कोरोना महामारी से सुरक्षित रहने के सभी उपाय बरतते हुए सभी कार्यक्रम सम्पन्न हो रहे हैं। अप्रेल माह के कार्यक्रम सम्पन्न हो रहे हैं। ❖

चलता रहे मेरा संघ

{विशेष मिलन शिविर माणकलाव में दिनांक 13.6.2004 को संघप्रमुख माननीय श्री भगवानसिंह जी द्वारा प्रभात संदेश उद्‌बोधन का संक्षेप।}

लक्ष्य प्राप्ति तक हमारी यात्रा में गति बनी रहे यही जीवन है। गति रुकी और मृत्यु हुई। लक्ष्य की प्राप्ति तक जीवन में अनेकों पड़ाव आते हैं। विद्वजनों का कहना है कि किसी भी पड़ाव को अन्तिम मान लेना गति का रुकना है और यही लक्ष्य के हिसाब से मृत्यु घटित हो गई। अत: हम सतत् रूप से जीवन के बारे में जागरूक बने रहें कि किसी भी पड़ाव पर रुक तो नहीं गये हैं। शरीर के तल पर स्थिर तो नहीं हो गए हैं। मन के तल पर गति रुक तो नहीं गई है। विकास तो हम करते हैं पर किसी भी विकास की अन्तिम परिणति लक्ष्य तक पहुँचना ही है। पूर्वजों के बताए सद्‌मार्ग का सदुपयोग करें। परमेश्वर प्राप्ति तक जहाँ भी रुकावट होगी, पर्यावरण दूषित होगा, प्रदूषण फैलेगा, बीमारियाँ फैलेंगी और वे लोग मृत्यु की ओर अग्रसर होंगे।

आगे बढने वालों को लोग देखा करते हैं। श्री क्षत्रिय युवक संघ ने हमें नेतृत्व देने को चुना है। अत: भ्रम में न रहें, ध्यान बनाये रखें कि लोग हमें देख रहे हैं। हम सोचते हों कि नेतृत्व देने की पात्रता हमारे में नहीं है तो अपने जीवन में उस पात्रता को उतारना होगा। यदि इससे इन्कार करते हैं तो आप स्वतंत्र हैं लेकिन यदि श्री क्षत्रिय युवक संघ को स्वीकार करते हैं तो संघ इस पात्रता उतारने की महत्ता को इन्कार नहीं कर सकता।

उद्देश्य के प्रति कितनी उत्कटता है, इसकी कसौटी कोई दूसरा नहीं, आप स्वयं हैं। आप ही धन हैं और आप ही उसके रक्षक हैं। संघ की आप सम्पदा हैं। आपको दायित्व सौंपा गया है कि इस सम्पदा की रक्षा करें। इस सम्बन्ध में आप कितने जागरूक हैं, यह बताने की नहीं समझने की आवश्यकता है। हम शिविर में जाते हैं, इसी में दायित्व की इतिश्री समझ लें तो यह तो एक पड़ाव है। यह दूसरी बीमारी का कारण बन जाएगा। शिविर को एक पड़ाव ही मानें, यहीं रुक नहीं जाना है। तीर्थों में लोग जाते हैं तो काशी में लोगों की जबान पर हर-हर महादेव की रटन चलती रहती है। हरिद्वार जाते हैं तो हर व्यक्ति हर-हर गंगे की रटन में रहता है। वैष्णो देवी जाते हैं तो जबान पर जय माता दी की गूंज रहती है। मथुरा जाते हैं तो चारों ओर राधे-राधे की गूंज बनी रहती है। पर यह सब भी एक पड़ाव है। तीर्थों में हमने ऐसी गूंज कर ली, मात्र यही भक्ति नहीं है। शिविर में आए शिविर की जानकारी रखी, संख्या की जानकारी ले ली, इतना मात्र भी पड़ाव ही है। चार प्रकार की वाणी कही गई है- वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती व परा। हम जबान वाली वाणी में ही उलझ गए तो जीवन बीत जाएगा पर गति रुक जायेगी। लक्ष्य प्राप्ति तक जहाँ भी रुके, यह मृत्यु का आलिंगन ही है।

लोग हमें देख रहे हैं इसलिए अपने व्यवहार में दिखावा पर्याप्त नहीं। हम उद्देश्य के बारे में कुछ बोल लें, सामूहिक संस्कारमय प्रणाली पर कुछ बोल लें यही पर्याप्त नहीं। क्षात्रधर्म की जय बोल लें, इतना ही पर्याप्त नहीं, क्षात्रधर्म की जय हमारे जीवन में परिलक्षित हो जाए, यही गति है। परमेश्वर की यह हमारे ऊपर कृपा हुई कि हमें मनुष्य जीवन दिया, ईश्वर तक पहुँचने के लिए यह जीवन साधन रूप में दिया। उस पर भी क्षत्रिय जाति में जन्म मिला यह प्रभु की विशेष कृपा हुई। यह भी प्रभु का प्रसाद है कि हमें संघ से जोड़ा। संघ ने हमें जगा-जगाकर सदैव जाग्रत करने का प्रयास किया है। इसके लिये हम सर्वप्रथम परमेश्वर, फिर मानव जाति, क्षत्रिय जाति व श्री क्षत्रिय युवक संघ के प्रति सदैव कृतज्ञता का भाव बनाये रखें। हमारी यात्रा उच्च की ओर है। श्री क्षत्रिय युवक संघ से आगे क्षत्रिय जाति, आगे मानव जाति, प्राणीमात्र और परमेश्वर की ओर सदैव गति बनी रहे। श्री क्षत्रिय युवक संघ में हमें यह समझाया जाता है। परमेश्वर आपकी इस समझ को हमेशा के लिए बनाए रखे, यही प्रार्थना। ❖

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

समाज के वर्तमान स्वरूप और उसकी विचारधारा में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना समय की माँग और ईश्वर की चाह को पूरा करने के लिए पूज्य श्री तनसिंहजी का अवतरण हुआ। समाज को कर्तव्य के सात्विक मार्ग पर प्रतिष्ठित करने के लिए वे समाज जागरण का कार्य करने लगे तो विरोध की आँच उठने लगी और आरोपियों ने उन पर आरोप लगाने में भी कोई कमी नहीं छोड़ी। इतिहास साक्षी है, किस महापुरुष का विरोध नहीं हुआ! जो भी महापुरुष परिवर्तन की लहर लेकर आये, उनका विरोध हुआ, तो पूज्य श्री तनसिंहजी का विरोध भी क्यों नहीं होता? होना ही था और हुआ। पूज्य श्री का जिन कारणों से विरोध होने लगा, उन कारणों पर जाने का किसी ने भी प्रयास नहीं किया, किसी ने भी यह जानने की कोशिश तक नहीं की कि वे जो कुछ भी कर रहे हैं, उनका हेतु क्या है, उनके पीछे कारण क्या है, उनके व्यवहार में कोई बदलाव है तो क्यों है, वे ऐसा क्यों कर रहे हैं? यह जानने की कोशिश तक नहीं की गई। केवल उन्हें संशय की नजरों से देखा गया, उन पर संशय प्रकट किया गया। इतना ही नहीं, कई ने तो अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए उन पर संकुचित और साम्प्रदायिक होने का भी आरोप मढ (जड़) दिया। पूज्य श्री तनसिंहजी ने उनके इन आरोपों के प्रत्युत्तर में जो कहा, उन्हीं की जुबानी –

''मुझ पर आरोप लगा, मुझे कहा गया कि तुम मूंजी हो, इसलिए कि लोगों के अच्छे कपड़े देखकर भी मैं फटे हाल रहता हूँ। लोगों को अच्छा खाना खाते देखकर भी भूंगड़े चबाता हूँ। लोग कमाते और खिलाते-पिलाते हैं पर मुझे खिलाने-पिलाने के नाम से सख्त चिढ़ है। मेरे उज्ज्वल भविष्य! लोग कैसे अजीब हैं, कि मेरा सब-कुछ छीनकर दीन-हीन बनाने के बाद भी चाहते हैं कि मुस्कराता रहूँ, खाना-पीना और मौज उड़ाना बदस्तूर चालू रखूँ। मैं जानता हूँ जिस दिन मैंने ऐसा किया, मैं अतीत को भूल जाऊँगा, और जो अतीत भूल जाता है, वह अपने भविष्य को नहीं बना सकता। मेरी यह कष्ट साधना शोक अथवा स्वभाववश नहीं है-केवल तेरे लिये।

''मुझ पर आरोप लगाया गया कि मैं बहुत अधिक अविश्वासी हूँ, किसी का भी विश्वास नहीं करता। उसका भी कारण है। अतीत के पृष्ठ खोलकर देखता हूँ तो लगता है-मेरा दीन-हीन यह समाज अनेक बार उठने का प्रयास कर चुका है, किन्तु हर बार उसे ठोकर अपने ही लोगों द्वारा दी गई है। आज मेरी यह दृढ मान्यता बन गई है, कि हमारी जाति को कोई खत्म नहीं कर सकता, चाहे सारा संसार एक हो जाये और दूसरी तरफ अकेली यह जाति हो, तो भी उसका कोई बाल बांका नहीं कर सकता, किन्तु यदि कभी कोई कुछ कर सकता है तो हमारा ही कोई कर सकता है। मैं जानता हूँ कि आज जो इतनी व्यथा से इस समाज में कार्य कर रहे हैं-उनके प्रति अविश्वास का कोई कारण नहीं, पर यह भी जानता हूँ कि आज तक यदि किसी ने धोखा दिया है तो ऐसे ही लोगों ने दिया है। फिर भी मैं अविश्वास करता हूँ तो स्वभाववश नहीं, केवल सतर्कता के कारण और केवल तेरे लिए।

''मुझ पर यह भी आरोप लगाया जाता है कि मैं नेता बनना चाहता हूँ। यह भी एक मिथ्या आरोप है। मैं यदि नेता बनता हूँ, तो इसलिए नहीं कि वही मेरा उद्देश्य है बल्कि इसलिए कि उसका उद्देश्य तुम हो, मेरे उज्ज्वल भविष्य! सच तो यह है कि मेरे इस समाज में वास्तविक अनुचर नहीं हैं। कहा तो यह जाता है कि हमारे पास सही नेतृत्व नहीं है, पर स्थिति यह है कि सही नेतृत्व, बिना सही अनुचर के हो भी नहीं सकता। इसलिये मैं अपने कौटुम्बीय जन को सही अनुचर का पाठ पढाता हूँ क्योंकि मैं जानता हूँ, सही नेतृत्व भी यहीं से निकलेगा। मैंने आज के नेतृत्व को देखा है, निर्धन होने का दम्भ भरने वालों के सामने यदि दो सौ रुपये की आमदनी का प्रश्न आता है तो उस ओर झुक कर दुनिया

की सारी परिस्थितियों और अपनी बुद्धि की समस्त विशेषताओं को अपने उस कार्य की पुष्टि के लिये तोड़ देते हैं। जब यह सब हकीकत में देखता हूँ तो लगता है, मुझे सहज ही में किसी का विश्वास नहीं करना है। सबसे पहले मुझे अपने आप पर भरोसा करना सीखना चाहिये और उसके बाद अपने अनुचर पर। तभी जाकर मैं विश्वस्त नेतृत्व का निर्माण कर सकूंगा, पर आज यदि मुझे औरंगजेब भी कहा जाए तो सहन कर लूंगा-केवल तेरे लिये।

''एक ऐसे भी सज्जन हैं, जिन्होंने वर्षों से ताबड़-तोड़ कोशिश की है, अपना नाम कमाने के लिए अखबार की हर पंक्ति को आकृष्ट करने की चेष्टा की है। अपने चारों ओर शहरी लोगों को घेर कर मेरे इस समाज की एकता को छिन्न-भिन्न करने का भागीरथ प्रयत्न किया है। पर वास्तविकता यह है कि आज तक उनके प्रयास अपनी डूबती हुई नाव को बचाने के रहे हैं। वे मुझ पर यह आरोप लगाते हैं कि मैं संकुचित और साम्प्रदायिक हूँ। राजपूत के लिए अलग समाज की कल्पना करना उसके जीवन को कुन्द करना है। यह समाज किसी के सहारे ही जी सकता है, अकेला आत्महत्या कर लेगा। यदि मैं अपने लिए नहीं और अपने इस समाज के लिए दिन रात प्रयत्न करता हूँ तो फिर संकुचित कैसे हुआ? यदि मेरा समाज निर्धन समाज ही है, तो उसके आत्म निर्भर होने और उसमें आत्मविश्वास आने से पतन कैसे होगा। यह तर्क मेरी समझ में नहीं आये। जब लोग राजपूत समाज को सदैव दूसरों पर आश्रित रखकर बढना चाहते हैं, वे किसी का भला नहीं कर रहे हैं-केवल खुद का ही भला कर रहे हैं। पर मैं विश्वास करता हूँ कि इन आरोपों के पीछे तात्विक बुद्धि का संशय नहीं है केवल स्वार्थ बुद्धि के कुलाबे हैं, इसलिए इन आरोपों को भी अनसुना करने का कार्य करता जा रहा हूँ-केवल समाज के उज्ज्वल भविष्य के लिए।''

हम अपनी अहं प्रधान बुद्धि से किसी महापुरुष को न तो समझ सकते हैं और न उनके भीतर छिपे सत्य व सौंदर्य को देख ही पाते हैं, अपितु अपने जैसा ही उन्हें भी मान बैठते हैं इसलिए न राम के भीतर छिपे सत्य व सौंदर्य को देख पाये, न कृष्ण के भीतर छिपे सत्य व सौंदर्य को ही देख पाये। सीता हरण के समय वनवास में राम के सम्पर्क में जो थे, उन्होंने ही राम की सहायता की, उनके सहयोगी बने। यही द्वापर में कृष्ण के समय हुआ। कृष्णकाल में कृष्ण को कोई अवतारी कह देता, उन्हें अन्तर्यामी कह देता तो लोग उनका उपहास करते, उनकी हँसी उड़ाते। पूज्य श्री तनसिंहजी को मेरे जैसे असंख्य लोग जान तो नहीं पाये, उन्हें समझ तो नहीं सके, पर हमारा विश्वास कहता है कि वे अन्तर्यामी थे, भूत, भविष्य व वर्तमान को जानते थे। वे जानते थे-आज क्या होने वाला है और कल क्या होने वाला है। वे वक्त और समय को जानते थे।

लोग दूसरों में कमियों और दोषों को क्यों देखते हैं? उन पर अनर्गल आरोप क्यों लगाते रहते हैं, उन्हें सदैव संशय और शंका की नजरों से ही क्यों देखा करते हैं? इसका कारण बताते हुए पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा-

''जगत में दिखाई देने वाली व्यापक असम्बद्धताओं के भीतर तात्विक एकता का दर्शन न होने का परिणाम यह होता है कि हम अपने सिवाय हर व्यक्ति में अवगुण और दोष देखते हैं। वे हमसे श्रेष्ठ कार्य भी करें तथा ईमानदारी से भी करें फिर भी हम उन्हें संशय और शंका की नजरों से ही देखते हैं। तत्व बोध के अभाव में हम यह मानकर चलते हैं, कि अन्य लोगों से हमारा कोई मुकाबला नहीं। दूसरों में दोषों और अभावों को देखना चाहे कितना ही सुखद और सुविधाजनक लगे, वास्तव में यह क्रिया अपने दोषों के प्रति अपनी ही कुण्ठा है।''

यह सच है कि हम जैसे लोग अपनी बुद्धि से पूज्य श्री तनसिंहजी जी जैसे महापुरुष के व्यवहार के हेतु और मर्म को नहीं समझ सके। जो लोग अपनी अहं प्रधान बुद्धि के कारण पूज्य श्री के क्रिया-कलापों का विरोध करने लगे और उन पर आरोप लगाने लगे तथा उन्हें संशय और शंका की नजरों से देखने लगे, वे विरोधी बनकर उभरे। जो लोग भले ही पूज्य श्री तनसिंहजी को समझ तो न पाये हों, पर उनका अनुसरण करने लगे, उनके अनुकूल बने रहे, वे उनके सहायक व सहयोगी के रूप में उभरे, उन्हें अपने जीवन में नि:सन्देह शान्ति का अहसास हुआ। पूज्य श्री के जीवन में कुछेक ऐसे लोग भी आये, जिन्होंने मन, प्राण, शरीर से ही समर्थन नहीं, पूर्ण व्यक्तित्व से उनका समर्थन किया, उनके जीवन में शान्ति उतरी, अमृत छलका। **(क्रमशः)**

गतांक से आगे

मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम

– जयदयाल जी गोयन्दका

सख्य-प्रेम

श्रीराम का अपने मित्रों के साथ भी अतुलनीय प्रेम का बर्ताव था। वे अपने मित्रों के लिये जो कुछ भी करते, उसे कुछ नहीं समझते थे; परन्तु मित्रों के छोटे-से-छोटे कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते थे। इसका एक छोटा-सा उदाहरण यहाँ लिखा जाता है। अयोध्या में भगवान् का राज्याभिषेक होने के बाद बंदरों को विदा करते समय मुख्य-मुख्य बंदरों को अपने पास बुलाकर प्रेमभरी दृष्टि से देखते हुए श्रीरामचन्द्रजी बड़ी सुन्दर और मधुर वाणी में कहने लगे-

सुहृदो मे भवन्तश्च शरीरं भ्रातरस्तथा।
युष्माभिरुद्धृतश्चाहं व्यसनात् काननौकसः।।
धन्यो राजा च सुग्रीवो भवद्भिः सुहृदां वरैः।

(वा.रा., 7 । 39 । 23-24)

'वनवासी वानरो! आप लोग मेरे मित्र हैं, भाई हैं तथा शरीर हैं एवं आप लोगों ने मुझे संकट से उबारा है, अतः आप सरीखे श्रेष्ठ मित्रों के साथ राजा सुग्रीव धन्य हैं।' इसके सिवा और भी बहुत जगह श्रीराम ने अपने मित्रों के साथ प्रेम का भाव दिखाया है। सुग्रीवादि मित्रों ने भगवान के सख्य-प्रेम की बारम्बार प्रशंसा की है। वे उनके बर्ताव से इतने मुग्ध रहते थे कि उनको धन, जन और भोगों की स्मृति भी नहीं होती थी। वे हर समय श्रीरामचन्द्र के लिये अपना प्राण न्योछावर करने को प्रस्तुत रहते थे। श्रीराम और उनके मित्र धन्य हैं! मित्रता हो तो ऐसी हो।

शरणागतवत्सलता

यों तो श्रीराम की शरणागतवत्सलता का वर्णन वाल्मीकीय रामायण में स्थान-स्थान पर आया है; किन्तु जिस समय रावण से अपमानित होकर विभीषण भगवान् राम की शरण में आया है, वह प्रसङ्ग तो भक्तों के हृदय में उत्साह और आनन्द की लहरें उत्पन्न कर देता है।

धर्मयुक्त और न्यायसंगत बात कहने पर भी जब रावण ने विभीषण की बात नहीं मानी, बल्कि भरी सभा में उसका अपमान कर दिया, तब विभीषण वहाँ से निराश और दुखी होकर श्रीराम की शरण में आया। उसे आकाश-मार्ग से आते देखकर सुग्रीव ने सब वानरों को सावधान होने के लिए कहा। इतने में ही विभीषण ने वहाँ आकर आकाश में ही खड़े-खड़े पुकार लगायी कि 'मैं दुरात्मा पापी रावण का छोटा भाई हूँ। मेरा नाम विभीषण है। मैं रावण से अपमानित होकर भगवान् श्रीराम की शरण में आया हूँ। आप लोग समस्त प्राणियों को शरण देने वाले श्रीराम को मेरे आने की सूचना दें।'

यह सुनकर सुग्रीव तुरन्त ही भगवान राम के पास गये और राक्षस-स्वभाव का वर्णन कर श्रीराम को सावधान करते हुए रावण के भाई विभीषण के आने की सूचना दी। साथ ही यह भी कहा कि 'अच्छी तरह परीक्षा करके आगे-पीछे की बात सोचकर जैसा उचित समझें, वैसा करें।' इसी प्रकार वहाँ बैठे हुए दूसरे बंदरों ने भी अपनी-अपनी सम्मति दी। सभी ने विभीषण पर संदेह प्रकट किया, पर श्रीहनुमानजी ने बड़ी नम्रता के साथ बहुत-सी युक्तियों से विभीषण को निर्दोष और सचमुच शरणागत समझने की सलाह दी। इस प्रकार सबकी बातें सुनने के अनन्तर भगवान् श्रीराम ने कहा-

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेतं कथञ्चन।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम्।।

(वा.रा. 6 । 18 । 3)

'मित्र भाव से आये हुए विभीषण का मैं कभी त्याग नहीं कर सकता। यदि उसमें कोटि दोष हो तो भी उसे आश्रय देना सज्जनों के लिये निन्दित नहीं है।' इस पर भी सुग्रीव को संतोष नहीं हुआ। उसने शंका और भय उत्पन्न करने वाली बहुत-सी बातें कहीं। तब श्रीराम ने सुग्रीव को फिर समझाया-

पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्यां चैव राक्षसान्।
अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर।।

* * *

बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम्।
न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परंतप।।

* * *

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।।
आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया।
विभीषणा वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम्।।

(वा.रा., 6 । 18 । 27, 33-34)

''वानरगणाधीश! यदि मैं चाहूँ तो पृथ्वी भर के उन पिशाच, दानव, यक्ष और राक्षसों को अँगुली के अग्रभाग से ही मार सकता हूँ (अतः डरने की कोई बात नहीं है)। परंतप! यदि कोई शत्रु भी हाथ जोड़कर दीनभाव से शरण में आकर अभय याचना करे तो दयाधर्म का पालन करने के लिये उसे नहीं मारना चाहिये। मेरा तो यह विरद है कि जो एक बार भी 'मैं आपका हूँ' यों कहता हुआ शरण में आकर मुझसे रक्षा चाहता है, उसे मैं समस्त प्राणियों से निर्भय कर देता हूँ। वानर श्रेष्ठ सुग्रीव! (उपर्युक्त नीति के अनुसार) मैंने इसे अभय दे दिया, अतः तुम इसे ले आओ-चाहे यह विभीषण हो या स्वयं रावण ही क्यों न हो।''

बस, फिर क्या था। भगवान् की बात सुनकर सब मुग्ध हो गये और भगवान के आज्ञानुसार तुरन्त ही विभीषण को ले आये। विभीषण अपने मंत्रियों सहित आकर श्रीराम के चरणों में गिर पड़ा और कहने लगा- 'भगवन्! मैं सब कुछ छोड़कर आपकी शरण में आया हूँ। अब मेरा राज्य, सुख और जीवन-सब कुछ आपके ही अधीन है।' इसके बाद श्रीराम ने प्रेमभरी दृष्टि और वाणी से उसे धैर्य दिया और लक्ष्मण से समुद्र का जल मँगाकर उसका वहीं लंका के राज्य पर अभिषेक कर दिया।

कृतज्ञता

वास्तव में देखा जाए तो भगवान् श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर थे। उनकी अपार शक्ति थी, वे स्वयं सब कुछ सकते थे और करते थे; उनका कोई क्या उपकार कर सकता था। तथापि अपने आश्रितजनों के प्रेम की वृद्धि के लिये उनकी साधारण सेवा को भी बड़े-से-बड़े रूप देकर आपने अपनी कृतज्ञता प्रकट की है।

सीता को खोजते-खोजते जब श्रीराम रावण द्वारा युद्ध में मारकर गिराये हुए जटायु की दशा देखते हैं, उस समय का वर्णन है-

निकृत्तपक्षं रुधिरावसिक्तं तं गृध्रराज परिगृह्य राघवः।
क्व मैथिली प्राणसमा गतेति विमुच्य वाचं निपपात भूमौः।।

(वा.रा., 3 । 67 । 29)

''जिसके पंख कटे हुए थे, समस्त लहू-लुहान हो रहा था ऐसे गीधराज जटायु को हृदय से लगाकर श्रीरघुनाथजी 'प्राण-प्रिया जानकी कहाँ गयी?' इतना कहकर पृथ्वी पर गिर पड़े।''

फिर रावण का परिचय देते और सीता को ले जाने की बात कहते-कहते ही जब पक्षिराज के प्राण उड़ जाते हैं, तब भगवान श्रीराम स्वयं अपने हाथों से उसकी दाह-क्रिया करते हैं। कैसी अद्‌भुत कृतज्ञता है!

इसी तरह और भी बहुत-से प्रसंग हैं। वानरों, राजाओं, ऋषियों और देवताओं से बात करते समय आपने जगह-जगह पर कहा है कि 'आप लोगों की सहायता और अनुग्रह से ही मैंने रावण पर विजय प्राप्त की है।'

जब श्री हनुमानजी सीताजी का पता लगाकर भगवान राम से मिले हैं, उस समय उनके कार्य की बार-बार प्रशंसा करके अन्त में रघुनाथ जी ने यहाँ तक कहा है कि 'हनुमान्! जानकी का पता लगाकर तुमने मुझे, समस्त रघुवंश को और लक्ष्मण को भी बचा लिया। इस प्रिय कार्य के बदले में कुछ दे सकूँ, ऐसी कोई वस्तु मुझे नहीं दिखायी देती। अतः अपना सर्वस्व यह आलिङ्गन ही मैं तुझे देता हूँ।' इतना कहकर हर्ष से पुलकित श्रीराम ने हनुमान को हृदय से लगा लिया। राज्याभिषेक हो जाने के बाद हनुमान को विदा करते समय हनुमान की सेवा और कार्यों का स्मरण करके भगवान राम कहते हैं-

एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे।
शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्।।
मदङ्गे जीर्णतां यातु यत्त्वयोपकृतं कपे।
नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम्।।

(वा.रा., 7 । 40 । 23-24)

'हनुमान! तुम्हारे एक-एक उपकार के बदले में मैं अपने प्राण दे दूँ तो भी इस विषय में शेष उपकारों के लिये तो हम तुम्हारे ऋणी ही बने रहेंगे। तुम्हारे द्वारा किये हुए उपकार मेरे शरीर में ही विलीन हो जाएँ- उनका बदला चुकाने का मुझे कभी अवसर ही न मिले; क्योंकि आपत्तियाँ आने पर ही मनुष्य प्रत्युपकारों का पात्र होता है।' इससे पता चलता है कि भगवान् श्रीराम का कृतज्ञता का भाव कितना आदर्श था।

प्रजारञ्जकता

श्री रामचन्द्रजी में प्रजा को हर तरह प्रसन्न रखने का गुण भी बड़ा ही आदर्श था। वे अपनी प्रजा का पुत्र से भी बढ़कर वात्सल्य प्रेम से पालन करते थे। सदा-सर्वदा उनके हित में रत रहते थे। यही कारण था कि अयोध्यावासियों का उन पर अद्भुत प्रेम था।

श्रीराम के वन गमन का, चित्रकूट में भरत के साथ प्रजा से मिलने का और परमधाम में पधारने के समय का वर्णन पढ़ने से पता चलता है कि आरम्भ से लेकर अन्त तक प्रजा के छोटे-बड़े सभी स्त्री-पुरुषों का श्रीराम में बड़ा ही अद्भुत प्रेम था। वे हर हालत में श्रीराम के लिये प्राण न्योछावर करने को तैयार रहते थे। उन्हें भगवान राम का वियोग असह्य हो गया था।

जब श्री रामचन्द्रजी वन में जाने लगे, तब प्रजा के अधिकांश लोग प्रेम में पागल होकर उनके साथ हो लिये। भगवान श्रीराम ने बहुत-कुछ अनुनय-विनय की; किन्तु चेष्टा करने पर भी वे प्रजा को लौटा नहीं सके। आखिर उन्हें सोते हुए छोड़कर ही श्रीराम को वन में जाना पड़ा। उस समय के वर्णन में यह भी कहा गया है कि पशु-पक्षी भी उनके प्रेम में मुग्ध थे। उनके लिये श्रीराम का वियोग असह्य था। परमधाम में पधारते समय का वर्णन भी ऐसा ही अद्भुत है।

इसके सिवा जिस सीता के वियोग में श्रीराम ने एक साधारण विरह-व्याकुल कामी मनुष्य की भाँति पागल होकर विलाप किया था उसी सीता को-यद्यपि वह निर्दोष और पति-परायण थी तो भी, प्रजा की प्रसन्नता के लिये त्याग दिया। इससे भी उनकी प्रजारञ्जकता का आदर्श भाव व्यक्त होता है।

श्रीराम का महत्त्व

श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा भगवान विष्णु के अवतार थे, यह बात वाल्मीकीय रामायण में जगह-जगह कही गयी है। जब संसार में रावण का उपद्रव बहुत बढ़ गया, देवता और ऋषिगण बहुत दुखी हो गये, तब उन्होंने जाकर ब्रह्मा से प्रार्थना की। पितामह ब्रह्मा देवताओं को धीरज बँधा रहे थे, भगवान् विष्णु के प्रकट होने का वर्णन इस प्रकार आता है-

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः।
शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः।।
वैनतेयं समारुह्य भास्करस्तोयदं यथा।
तप्तहाटककेयूरो वन्द्यमानः सुरोत्तमेः।।

(वा.रा. 1 । 15 । 16-17)

'इतने में ही महान् तेजस्वी उत्तम देवताओं द्वारा वन्दनीय जगत्पति भगवान विष्णु मेघ पर चढ़े हुए सूर्य के समान गरुड़ पर सवार हो वहाँ आ पहुँचे। उनके शरीर पर पीताम्बर तथा हाथों में शङ्ख, चक्र और गदा आदि आयुध एवं चमकीले स्वर्ण के बाजूबंद शोभा पा रहे थे।' इसके बाद देवताओं की प्रार्थना सुनकर भगवान ने राजा दशरथ के घर मनुष्य रूप में अवतार लेना स्वीकार किया। फिर वहीं अन्तर्धान हो गये।

श्री रामचन्द्र का विवाह होने के बाद जब वे अयोध्या को लौट रहे थे, उस समय रास्ते में परशुरामजी मिले। श्रीराम विष्णु के अवतार हैं या नहीं-इसकी परीक्षा करने के लिये उन्होंने श्रीराम से भगवान विष्णु के धनुष पर बाण चढ़ाने के लिये कहा; तब श्री रामचन्द्रजी ने तुरन्त ही उनके हाथ से दिव्य धनुष लेकर उस पर बाण चढ़ा दिया और कहा-'यह दिव्य वैष्णव बाण है। इसे कहाँ

छोड़ा जाए?' यह देख-सुनकर परशुराम जी चकित हो गये। उनका तेज श्रीराम में जा मिला। उस समय श्रीराम की स्तुति करते हुए परशुरामजी कहते हैं-

अक्षय्यं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम्।
धनुषोऽस्य परामर्शात् स्वस्ति तेऽस्तु परन्तप।।

(वा.रा., 1 । 76 । 17)

'शत्रुतापन राम! आपका कल्याण हो। इस धनुष के चढ़ाने से मैं जान गया कि आप मधु-दैत्या को मारने वाले देवताओं के स्वामी साक्षात् अविनाशी विष्णु हैं।' इस प्रकार श्रीराम के प्रभाव का वर्णन करके और उनकी प्रदक्षिणा करके परशुरामजी चले गये।

रावण का वध हो जाने के बाद जब ब्रह्मासहित देवता लोग श्री रामचन्द्रजी के पास आये उनसे बातचीत करते हुए श्रीराम ने यह कहा कि 'मैं तो अपने को दशरथ जी का पुत्र राम नाम का मनुष्य ही समझता हूँ! मैं जो हूँ, जहाँ से आया हूँ-यह आप लोग ही बतायें।' इस पर ब्रह्माजी ने सबके सामने संपूर्ण रहस्य खोल दिया। वहाँ राम के महत्त्व का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं-

भवान्नारयणो देव: श्रीमांश्चक्रायुध: प्रभु:।
एकशृङ्गो वराहस्त्वं भूतभव्यसपत्नजित्।।
अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव।
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वकसेनतश्चतुर्भुज:।।
शार्ङ्गधन्वा हृषीकेश: पुरुष: पुरुषोत्तम:।
अजित: खड्गधृग् विष्णु: कृष्णश्चैव वृहद्बल:।।

(वा.रा., 6 । 117 । 13-15)

'आप साक्षात् चक्रपाणि लक्ष्मीपति प्रभु श्री नारायण देव हैं। आप ही भूत-भविष्य के शत्रुओं को जीतने वाले और एक श्रृङ्गधारी वराहभगवान हैं। राघव! आप आदि, मध्य और अन्त में सत्यस्वरूप अविनाशी ब्रह्म हैं। आप संपूर्ण लोकों के परमधर्म चतुर्भुज विष्णु हैं। आप ही अजित, पुरुष, पुरुषोत्तम, हृषीकेश तथा शार्ङ्ग-धनुष वाले, खड्गधारी विष्णु हैं और आप ही महा बलवान कृष्ण हैं।'

इसी तरह और भी बहुत कुछ कहा है। वहीं राजा दशरथ भी लक्ष्मण के साथ बातचीत करते समय श्रीराम की सेवा का महत्त्व बतलाकर कहते हैं-

एतत्तदुक्तमव्यक्तमक्षरं ब्रह्मसम्मितम।
देवानां हृदयं सौम्य गुह्यं राम: परंतप:।।
अवाप्तं धर्मचरणं यशश्च विपुलं त्वया।
एनं शुश्रूषताव्यग्रं वैदेह्या सह सीतया।।

(वा.रा., 6 । 119 । 30-31)

'सौम्य! ये परंतप राम साक्षात् वेदवर्णित अविनाशी अव्यक्त ब्रह्म हैं। ये देवों के हृदय और परम रहस्यमय हैं। जनकनन्दिनी सीता के सहित इनकी सावधानीपूर्वक सेवा करके तुमने पवित्र धर्म का आचरण और बड़े भारी यश का लाभ किया है।'

इसके सिवा और अनेक बार ब्रह्माजी, देवता और महर्षियों ने श्रीराम के प्रभाव का यथासम्भव वर्णन किया है। मनुष्य लीला समाप्त करके परमात्मा में पधारने के प्रसंग में भी यह बात स्पष्ट कर दी गयी है कि श्रीराम साक्षात् पूर्णब्रह्म परमेश्वर थे। अत: वाल्मीकीय रामायण को प्रामाणिक ग्रन्थ मानने वाला कोई भी मनुष्य श्रीराम के ईश्वर होने में शंका कर सके, ऐसी गुंजाइश नहीं है।

पराक्रम

भगवान् श्री रामचन्द्रजी के बल, पराक्रम, वीरता और शस्त्र कौशल के विषय में तो कहना ही क्या है। संपूर्ण रामायण में इसका वर्णन भरा पड़ा है। कहीं से भी युद्ध का प्रसंग निकाल कर देख सकते हैं। विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करते समय उन्होंने बात-की-बात में ताड़का और सुबाहु को मारकर मारीच को मानवास्त्र के द्वारा सौ योजन दूर समुद्र के बीच में गिरा दिया।

जनकपुर में जिस धनुष को बड़े-बड़े वीर और महाबली राजा अत्यन्त परिश्रम करके भी नहीं हिला सके, उसी को श्रीराम ने अनायास ही उठाकर तोड़ दिया। विष्णु के धनुष पर बाण चढ़ाकर परशुरामजी का तेज हर लिया। पंचवटी में चौदह हजार राक्षसों को जरा-सी देर में बिना किसी की सहायता के मार गिराया। बाली-जैसे महायोद्धा को एक ही बाण से मार डाला। धनुष पर बाण चढ़ाने मात्र से ही समुद्र में खलबली मच गयी और वह भयभीत होकर

(शेष पृष्ठ 16 पर)

गतांक से आगे

मेरी साधना

लेखक – पू. आयुवानसिंहजी, गुजराती भाष्य–श्री बलवंतसिंह पांची, हिन्दी अनुवाद–श्री धर्मेन्द्रसिंह आम्बली

अवतरण–77

मेरे जीवन–साथी अभी से समझ लें और सावधान हो जाँय। इस साधना–पथ पर चलना कृपाण की धार पर चलने के समान कठिन होगा, इस पथ की रज में अपना अस्तित्व मिटाकर मिल जाना होगा,–जीवन को मृत्यु का स्वाद चखने के लिए तैयार करना पड़ेगा। तब कहीं जाकर साधना के रूप में साधकों की यह तपस्यापूर्ण होगी। पूछ लीजिए अपनी आत्मा से! यदि अन्त तक साथ देना स्वीकार है तो ठीक, नहीं तो अभी से नमस्ते!

सखा समझ लो अभी से, रास्ता है खांडे की धार।

साधक इस अवतरण में अपने जीवन साथी मित्रों को सावधान करते हुए–मार्ग पर चलना कितना मुश्किल है, कठिन है, इसकी समझ देते हुए अन्त में कहता है–'पूछ लीजिए अपनी आत्मा से! यदि अंत तक साथ देना स्वीकार है तो ठीक, नहीं तो अभी से नमस्ते!' एक दम सरल सी बात है, समझ में आ जाए वैसी है। इसमें कुछ ज्यादा समझाने की आवश्यकता हो, ऐसा नहीं लगता है। ठीक है न!

लेकिन वो कहावत है न–'बाबा बने हैं तो हिन्दी बोलना पड़ेगा'। इस न्याय से बाबा की तरह 'छे' (गुजराती) की जगह 'है' लगातार हिन्दी बोलने का संतोष अनुभव करते हैं, इसी तरह पूरा समझ में आए न आए फिर भी उल्टी–पल्टी बातें कागज पर चित्रण करनी पड़ती है। जिम्मेवारी सौंपी है सम्पादक जी ने इसलिए निभानी तो पड़ेगी ही। वादा किया है तो निभाना है।

गत दो अवतरणों में क्षात्रधर्म के बारे में बहुत कुछ कहा, लिखा। क्षात्रधर्म इस प्रवृत्ति का आधार है, हृदय है। उद्देश्य है, नींव है। इसलिए 'मेरी साधना' पुस्तक के 111 अवतरणों में उसी का ही महत्त्व रहेगा। उसी के बारे में अलग–अलग प्रकार से और अलग–अलग अर्थ में बातें करनी रहगी।

इस मार्ग की मिट्टी में अपना अस्तित्व मिला देना पड़ेगा। जीवन को मृत्यु का स्वाद चखाने के लिये तैयार रहना पड़ेगा। ये दोनों वाक्य किसी भी उत्तम प्रवृत्ति करने वाले कार्यकर्ता के लिए सोचनीय बनकर रह जाएँ, वैसे हैं। जगत में अनेक प्रवृतियाँ चल रही हैं, उनमें से शायद ही किसी प्रवृत्ति या संस्था के कार्यकर्ता के सामने ऐसी ललकार आती होगी। इसी ललकार के आधार पर श्री क्षत्रिय युवक संघ का कार्य कितनी हिम्मत का, साहस का और 'कठिन' है, इसका कुछ अंदाजा लग सकता है। कुछ एक भावुक समाज–प्रेमी कहते हैं–प्रवृति खूब अच्छी है लेकिन इसका जितना विकास होना चाहिए, उतना होता नहीं है।

इसका उत्तर इस अवतरण को पढकर आता है कि इसी प्रवृति में कार्यकर्ता को समा जाना पड़ता है। इस प्रवृति में कार्य करने वालों को इस मार्ग की मिट्टी में अपना अस्तित्व मिला देना पड़ेगा। यह वाक्य हमारे जैसे, यानी मेरे और आप जैसे सामान्य व्यक्ति को सामान्य ही लगेगा। लेकिन जो काम कर रहे हैं, उनके जीवन की ओर नजर करेंगे तो मालूम पड़ेगा कि उनके जीवन में व्यक्तिगत जीवन जैसा कुछ भी नहीं रहता है। उनका समग्र जीवन समर्पित व संघमय होता है। जैसे योग मार्ग पर ईश्वर प्राप्ति के लिये साधना करने वाले का समग्र जीवन ईश्वर को समर्पित होता है। इसीलिए तो श्री क्षत्रिय युवक संघ के मार्ग को योग मार्ग कहा है। जिसमें संपूर्ण शरणागति, संपूर्ण समर्पण भाव का विकास हुआ हो, वही व्यक्ति संघ कार्य योग्य रीति से अच्छी तरह कर सकता है।

प्रवृति का विकास नहीं है, ऐसा कहने वाले इन बातों को बारीकी से सोचें तो प्रश्न का उत्तर मिल जाएगा। श्री क्षत्रिय युवक संघ का कार्य तलवार की धार पर चलने जैसा कठिन काम है। बहाव के सामने तैरना अर्थात् समय के प्रवाह के विरुद्ध काम है। लेकिन इतिहास साक्षी है कि

जिसने समय के प्रवाह के साथ चलने का व्यवहार किया वे नाम शेष हो गए, जो प्रवाह के सामने चले, जूझे लड़े और मरे, वे अमर हो गए। प्रताप, शिवाजी।

हम जो प्रवाह के सामने चलना शुरू कर दें तो इस अवतरण की चर्चा सम्भवतया लम्बी हो जाए। इसलिए ज्यादा लम्बी बातें करने की आवश्यकता नहीं। समाज सेवा का काम करने वालों, बात करने वालों को पूछो कि 'क्या करते हो?' उत्तर में 'समाज-सेवा' सुनने को मिले तो पू. तनसिंहजी का सूत्र है कि समाज सेवा करने वालों में मुख्य रूप से तीन चीजों की आवश्यकता होती है- 'खून, पसीना और आँसू'। समाज सेवा का दावा करने वालों में तीन द्रव्य पदार्थ न हो तो गुजरात की मीरा पू. गंगा सती की भाषा में-'मेरा ही' (अपना ही) मेहरबान न हो तो कौन कहे? आप कहेंगे? माटी में मिल जाना। अस्तिव मिटा देना, तलवार की धार पर चलना, ये सब लिखना या बोलने जितना सरल नहीं है। जीवन को मृत्यु का स्वाद चखाने को तैयार (तत्पर) रहने के बाद भी सफलता ही मिले आवश्यक नहीं। पर ये हो, तभी कदाचित 'साधना के रूप में साधकों की यह तपस्या पूर्ण होगी।' इसीलिए कहा है-'पूछ लीजिए अपनी आत्मा से! यदि अन्त तक साथ देना स्वीकार्य है तो ठीक, नहीं तो अभी से नमस्ते।'

'देश, धर्म, जाति और संस्कृति के लिए चुनौती झेलने, स्वीकार करने की सामर्थ्य और समझदारी दें, ऐसी प्रार्थना किससे करेंगे? विश्व के सृजनहार से।

चिंतन मोती- परमात्मा हमेशा हमारे साथ में हैं। इसलिए डरें नहीं, निर्भय बनें। विघ्न अवरोधों से डरें नहीं, उनका सामना करें। उत्साही बनें, क्योंकि उत्साही मनुष्य के लिए संसार में कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं है।

अवतरण-78

यह क्या है भगवन्! अपने ही पराये बनकर विरोध कर रहे हैं मेरी साधना का। इनसे तो सक्रिय सहायता लेने आ रहा था, मैं। ओह अब समझा। मेरी साधना की महानता के लिए यह विरोध आवश्यक है। आन्तरिक विरोध मेरे साधना-पथ की सुरक्षा के लिए सतर्कता, कर्मठता और उत्साह नामक प्रहरियों को उत्पन्न करता है। भगवन्! इस अनुकम्पा के लिए धन्यवाद।

अपना पराया बनकर पीड़ा दे अपार,
सावधानी का संकेत प्रभु तेरा आभार।

इस अवतरण के प्रारम्भ में साधक भगवान से फरियाद करता है। अन्त में जिस कारणवशात फरियाद करता है, उस कारण को प्रवृति के लिए हितकर मानकर भगवान की अनुकम्पा के लिए धन्यवाद देता है। बात में थोड़ा असमंजस सा लगता है। इस असमंजस को थोड़ा सरल बनाकर समझने का प्रयास करते हैं।

श्री क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृति सत्व और स्वत्व गुमा कर बैठी हुई क्षत्रिय जाति की जागृति, प्रगति, उत्थान आदि गुमाई हुई प्रतिष्ठा पुन: प्राप्त करने के लिए माथापच्ची है। मेहनत और पुरुषार्थ है, प्रयास है, साधना है। ऐसी प्रवृति का विरोध जब स्वजन से, स्वजाति में से ही होता है, तब प्रवृति करने वाले को झटका लगता है। आघात लगता है, यह सब स्वाभाविक है। इसीलिए साधक भगवान से फरियाद करता है-'यह क्या है भगवन! अपने ही पराये बनकर विरोध कर रहे हैं मेरी साधना का?' किसी भी क्षेत्र की प्रवृति का, कार्य का जब स्वजन, स्व जाति की ओर से विरोध हो, टीका-टिप्पणी हो, उपहास हो, तब उसकी फरियाद भगवान के अलावा दूसरे किस को करें? जिससे संपूर्ण सहयोग की अपेक्षा हो, वही विरोध करता है तब स्वाभाविक है कि भगवान को दोष और फरियाद हो जाती है।

साधक अनुभवी है, अभ्यासी है, चिंतन-मननशील है। सूझबूझ विचार-विवेक से सज्ज है। इसलिए इस बारे में गहराई से सोचेगा ही। महाराजा भर्तृहरि ने कहा है- 'जाति हो, फिर अग्नि की क्या आवश्यकता है?' पू. तनसिंहजी ने सहगीत पंक्ति में कहा है-'त्याग, तप को युग से मिलती है सदा आलोचना'। ऐसे सूत्रों से आश्वासन प्राप्त कर, यह तो होता है, चलता रहता है, ऐसा मनोमन समाधान करने के बाद गम्भीर रूप से सोचकर प्रवृति के

लिए, साधना की महानता के लिये ऐसा आवश्यक मानते हैं। विरोध से प्रवृति को किस तरह और क्या फायदा है, उसे समझाते हुए लिख रहे हैं-'आन्तरिक विरोध मेरे साधना-पथ की सुरक्षा के लिए सर्तकता, कर्मठता और उत्साह नामक प्रहरियों को उत्पन्न करता है।'

विरोध, कार्य करने वाले व्यक्ति को सतर्क, कर्मठ और उत्साहित करता है। हम व्यावहारिक क्षेत्र में देखते हैं, अनुभव करते हैं। ऐसे ही प्रवृति के संचालक कर्ता जब आन्तरिक विरोध हो तब अपनी प्रवृति खूब चोकन्ना रहकर करते हैं। समग्र वातावरण को, परिस्थिति को ध्यान में रखकर सावधानी से काम करते हैं, जिससे विरोधियों को आक्षेप लगाने की या प्रवृति को बदनाम करने तक का अवसर न मिले। उसमें भी ऐसी सात्विक, सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय की प्रवृति में तो विशेष सतर्क बनकर कार्य करते हैं। सर्तकता के साथ ज्यादा पुरुषार्थ, कर्मठता निभाते हैं। सतर्कता और कर्मठता के साथ उनका कार्य करने का उत्साह भी बढ जाता है।

इस रीति से प्रवृति करने वाले को आन्तरिक विरोध सतर्कता, कर्मठता और उत्साह रूप तीन प्रहरी मिल जाते हैं। जो सावधानी, सचेतता के साथ ध्यानपूर्वक, उत्साह-पूर्वक काम करने का निमित्त बन जाते हैं। ऐसे आन्तरिक विरोध प्रवृति की महत्ता और महानता बढाने में उपयोगी बनते हैं।

इसीलिए शुरुआत में दुखी हुआ साधक भगवान से प्रार्थना करता है, वही साधक जब आन्तरिक विरोध प्रवृति को क्या फायदा करता है, इस बात को समझता है तब फरियाद को भूलकर भगवान को कहता है-'भगवन्! इस अनुकम्पा के लिये धन्यवाद।'

हम कहते हैं न कि भगवान जो भी करें वो हमारे भले के लिए है। इसके अनुसार साधक भी स्वीकार करता है कि भगवान इस विरोध को तेरी अनुकम्पा मानकर दया मानकर धन्यवाद देता हूँ। जिस विरोध के कारण प्रवृति को नुकसान नहीं किन्तु फायदा ही फायदा होने वाला है, इसे पूर्ण रूप से समझने से पहले प्रारम्भ में उलाहना के रूप में जो कुछ कहा, उसके बदले में क्षमा माँगता हूँ।

इस अवतरण से हम यानी क्षत्रिय समाज क्या निश्चय करेगा? कोई कुछ कहेगा? ईर्ष्या, द्वेष के कारण किसी भी अच्छी प्रवृति के कार्य का विरोध नहीं करने का संकल्प करें। ऐसे संकल्प के लिए भगवान बल दें, ऐसी प्रार्थना के साथ-जय संघशक्ति!

अर्क- तेरी गति समझने, तेरा सुनाम भजने, हे तात! दया कर दे-सुमति व सुविचार।

अवतरण-79

मेरे ये बेचारे विरोधी! क्या सैद्धान्तिक धरातल पर है इनका विरोध?-नहीं। ये आत्म-लघुत्व की हीन भावना से पराभूत हैं,-अपनी आत्महीनता की प्रवृति को विरोध और कुतर्क के आवरण के नीचे दबा देने का है, इनका यह प्रयास। तब तो दया और क्षमा के पात्र हैं जी ये। हाँ! मेरी साधना के लिये ऐसा निस्तेज विरोध न लाभदायक है न हानिप्रद ही।

झूठ और दम्भ हो विरोध की जड़, डर उसका न हो, नहीं उसका कोई मूल्य।

पिछले अवतरण में साधक ने मेरी साधना के विरोधी के, विरोध के बारे में मनोमंथन व्यक्त किया। इस अवतरण में भी मनोमंथन को आगे बढाते हुए बताया है कि क्या उनका विरोध जायज है? विरोध के लिए कोई सच्चा आधार है या बस अपनी महत्ता दिखाने के लिए विरोध करते हैं। यह बात समझाने के लिये साधक 'मेरे ये बेचारे विरोधी' इस वाक्य से शुरू करते हैं। विरोधियों के लिए बेचारे शब्द का उपयोग किया है। जो किसी अन्य के द्वारा की जा रही प्रवृति के सामने अपनी लघुता बचाने के लिए विरोध करते हैं। ऐसों को बेचारा ही कहा जाता है। उनके लिए साधक इस वाक्य का प्रयोग करते हैं-'अपनी आत्महीनता की प्रवृति को विरोध और कुतर्क के आवरण के नीचे दबा देने का है, इनका यह प्रयास।' गाँव में, समाज में और पहले तो परिवार में ऐसी हीन वृति का कदम-कदम पर अनुभव होता रहता है। उदाहरणार्थ गाँव में कोई मुखिया के कहे बिना, पूछे बिना गाँव के हित का, उपयोगी और आवश्यक काम शुरू करे तो मुखिया

की गर्मी का पारा ऊपर चढ जाएगा। गाँव के लोगों को इकट्ठा करके उस काम से गाँव को लाभ की जगह नुकसान होगा, ऐसा समझाकर लोगों को अपना समर्थक बनाएगा। किसलिए? मात्र और मात्र अपना अहंकार, अज्ञान और मैं नीचा दिख रहा हूँ ऐसे वहम के कारण गाँव के हित को अहित में बदलने वाले खलनायक लगभग हर एक गाँव में देखने को मिलते हैं। सभी को इस बात का अनुभव है। वह परिवार, समाज और गाँव भाग्यशाली गिना जाएगा जिसमें ऐसे निरर्थक, निकम्मे विरोध को समझकर ऐसे विरोध करने वालों को रोकने की समझ परिवार, गाँव या समाज अपनाये उसमें परिवार, गाँव व समाज का हित है।

जो विरोधी अपनी हीनवृति के कारण ही किसी प्रवृति या कार्य का विरोध करते हों तो वे दया के पात्र हैं, क्षमा के पात्र हैं। ऐसा साधक का मन्तव्य है। समाज ऐसे पात्रों पर दया और क्षमा के भाव की उपेक्षा करे इसी में समाज का श्रेय है।

अवतरण के प्रारम्भ में साधक प्रश्न करता है-'क्या सैद्धान्तिक धरातल पर है इनका विरोध?' हम सिद्धान्त के आधार पर उत्तर खोजें तो हमारा अर्थात् क्षत्रिय का आदर्श सिद्धान्त तो है-सत्य, धर्म, राष्ट्र और निर्बल जन की रक्षा के लिए लड़ना और मरना। इस सिद्धान्त से हम चूक गए हैं। इसीलिए तो पू. तनसिंहजी ने गीत की एक पंक्ति में कहा है-'जिनके हैं नहीं सिद्धान्त मरना जीना क्या जाने?' सिद्धान्तहीन व्यक्ति को तो जीने-मरने तक की भी जानकारी नहीं रहती तब सैद्धान्तिक भूमिका पर विरोध करने की जानकारी कहाँ से आएगी?

साधक ने ऐसे सैद्धान्तिक भूमिका विहीन विरोध करने वालों के लिए जो शब्द प्रयोग किया है, वह-'बेचारा' अर्थात् 'बापड़ा'। यह सत्य है या नहीं, इसके लिए आजादी के बाद का अपना इतिहास देख लें। हम भव्य व अद्भुत इतिहास रचने वाले महापुरुषों, वीर पुरुषों के वारिसदार पीढियों से इतिहास रचना भूल गए। इसीलिए इतिहास की जगह हम व्यवहार तलाशें, अवलोकन करें तो यह शब्द झूठा है या सच्चा का पता चल सकता है। अपनी जाति को कुछ-कुछ मानने वाले बेचारे शब्द के विरोध में साधक के लिए घृणा या अपमानजनक शब्दों का प्रयोग करें तो वह विरोध भी सैद्धान्तिक भूमिका विहीन ही होगा। ऐसा घृणाजनक या अपमानजनक व्यवहार करने वाले तथाकथित वीर सम्भव है समाज में हों। अन्त में साधक ऐसे सिद्धान्त विहीन विरोधियों के विरोध के लिए कहते है-'मेरी साधना के लिए ऐसा निस्तेज विरोध न लाभदायक है, न हानिप्रद ही।' ऐसा अर्थ विहीन निकम्मा विरोध करने की वृति से भगवान हमें बचाये, ऐसी प्रार्थना है।

अर्क- जिसके जीवन में वृति, संकल्प और सिद्धान्त नहीं, वे मनुष्यता हीन हैं।

अवतरण-80

ये तो वे ही लोग हैं जिन्होंने धूर्तता और मायावी कृत्यों द्वारा मुझे अपने घर से निष्कासित कर रखा है। अब ये मेरी पैतृक सम्पत्ति का निश्चिन्त हो उपभोग करने में संलग्न हैं। मेरे ये ही विरोधी जब मेरी साधना का गला फाड़कर विरोध करते हैं तो मैं उसे क्यों सुनता और प्रभावित होता हूँ? किसी भी विरोध का महत्त्वांकन करने के पूर्व यह जान लेना नितान्त आवश्यक है कि ये विरोधी तत्व हैं कौन?

लूटकर मेरी सम्पत्ति करते हैं मौज, भ्रमित करने करते हैं विरोध।

इस अवतरण को समझने के लिए 1947 में देश की आजादी के बाद स्वदेशी शासक नियमों द्वारा धाक-धमकी से जो परिवर्तन विशेष रूप से हमारे वर्ग (राजपूत-क्षत्रिय) के लिए लाया गया है वो जानें या समझें तो अवतरण समझना सरल बन जाए।

आज की युवा पीढ़ी राजनीति में खूब रस लेती है। इसलिए उन्हें आजादी के बाद के इतिहास की जानकारी माहिती और समझ होगी ही। इसलिए अवतरण का लम्बा विश्लेषण करने की आवश्यकता नहीं लगती है।

लूट लिया, हड़प लिया। इस लूटी हुई, हड़पी हुई सम्पत्ति के उपभोग के बाद वे क्या करते हैं, यह जानना बहुत आवश्यक लगता है। यह जानने के लिए गहराई में

जाना पड़ेगा। जातिवाद के नाम पर देश के दो भाग करके अब शासन द्वारा अपने देश में जातिवाद को नेस्तनाबूद करके वर्ग विहीन समाज रचना करना चाहते हैं। शास्त्र पर आधारित मेरी साधना का वो वर्ग विरोध करता है। मेरी साधना पर अब तक हुई चर्चा के बाद इस सम्बन्ध में ज्यादा परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी खूब छोटी, सरल और समझ में आ जाए वैसी छोटी-सी माहिती देकर ज्यादा अच्छी तरह से समझने का प्रयास करें।

हमारे शास्त्रों का विश्व कल्याण की भावना का आधार लेकर मात्र मानव हित की ही नहीं, समग्र जीव, जड़-चेतनके हित की भावना को लेकर चलती प्रवृति 'मेरी साधना' यानी श्री क्षत्रिय युवक संघ। समझ में आया।

वर्ग विहीन समाज रचना के सामने यह प्रवृति उन्हें विरोधी लगती है, इसीलिए इसे घातक गिनकर इसका विरोध करते हैं। इतना ही नहीं, इसे बन्द कर देने का उपाय ढूंढते हैं। जैसे 'संघशक्ति' पत्रिका पर थोड़े समय के लिए प्रतिबन्ध रखा था। यह इतिहास वर्णन करने से लेख खूब लम्बा हो जाएगा, इसलिए इतना ही बस। 'सुज्ञेषु किंम बहुना'।

तो यह विरोधी तत्व कौन हैं, विरोध का महत्त्व अंकित करने से पहले जानना आवश्यक है। ये वे ही चालाक, होशियार और उस्ताद लोग हैं, जिन्होंने पीढियों से राष्ट्र के लिए, धर्म के लिए, संस्कृति के लिए बलिदान देने वाले वर्ग की सम्पत्ति कानून बनाकर, हड़पकर इस वर्ग को, समाज को कंगाल बना दिया। ऐसे विरोधी तत्वों के प्रभाव में आ जाने के बदले उनकी गंदी हरकत को भली प्रकार से समझकर उनसे बचने के लिए और ऊँचे उठने के उपाय ढूंढने चाहिए, आयोजन करना चाहिए।

यह काम हमारी सामाजिक संस्थाओं के बुद्धिमान, कुशल और काबिल नेतृत्व का है। जिस समाज, जाति के पास आदर्श नेतृत्व होगा, वह समाज को जागृत और सबल बना सकेगा और जो अवसरवादी नेतृत्व हो तो वह समाज को कहाँ ले जाएगा यह कहने की आवश्यकता है क्या?

इस अवतरण के लिए इतना काफी। हमको आदर्शवाद और अवसरवाद को समझने की शक्ति परमात्मा दें, ऐसी प्रार्थना के साथ जय संघशक्ति।

अर्क- आदर्शवाद ऊँचा ले जाता है, अवसरवाद नीचे।

(क्रमशः)

पृष्ठ 11 का शेष

मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम

शरण में आ गया। लंका जाकर भयंकर युद्ध में राक्षसों-सहित कुम्भकर्ण और रावण का वध करके समस्त संसार में विजय का डंका बजा दिया।

क्षमा

ऐसे बड़े पराक्रमी होने पर भी श्री रघुनाथजी इतने क्षमाशील थे कि वे अपने प्रति किये हुए किसी के अपराध को अपराध ही नहीं मानते थे। उन्होंने जहाँ कहीं भी क्रोध और युद्ध लीला की है, वह अपने आश्रितों और साधु पुरुषों के प्रति किए हुए अपराधों के लिये दण्ड देने और इसी बहाने दुष्टों को निर्दोष बनाने के लिये ही की है। मन्थरा-जैसी दासी के अपराध का उन्होंने कहीं जिक्र भी नहीं किया।

उपसंहार

श्रीराम के महत्त्वपूर्ण असंख्य आदर्श गुणों का लेखनी द्वारा वर्णन करना असम्भव ही है। आदि कवि श्री वाल्मीकिजी से लेकर आज तक सभी प्रधान-प्रधान कवियों ने श्रीरामचरित का वर्णन करके अपनी वाणी को सफल बनाने की चेष्टा की है, परन्तु श्रीराम के अनन्त गुणों का पार कोई नहीं पा सका। मैंने तो जो कुछ भी लिखा है वह केवल श्री वाल्मीकीय रामायण के आधार पर बहुत ही संक्षेप में लिखा है। वह भी मेरा केवल साहस मात्र ही है; क्योंकि न तो मुझे संस्कृत भाषा का विशेष ज्ञान है और न हिन्दी का ही। अत: विज्ञ पाठकजन त्रुटियों के लिये क्षमा करें। इसे पढ़-सुनकर यदि कोई भगवत्प्रेमी भाई किसी अंश में लाभ उठा सकेंगे तो मेरे लिये वह बड़े सौभाग्य की बात होगी और मैं उनका आभारी रहूँगा।

गतांक से आगे

महान क्रांतिकारी-राव गोपालसिंह खरवा

- ले. सुरजनसिंह झाझड़, संकलन व सम्पादन-डॉ. भंवरसिंह भगवानपुरा

महाराजा पटियाला और जाम साहब जामनगर

पंजाब के पटियाला राज्य के सिख राजा प्राचीनकाल में पंजाब के लक्खी जंगल क्षेत्र से मुल्तान तक के विस्तृत प्रदेश पर राज्य करने वाले भाटी राजपूतों के वंशधर थे।

जैसलमेर के भाटी और पटियाला के शासक सिक्ख राजा एक ही कुल की दो शाखाओं के प्रतिनिधि थे। अपनी दानशीलता के लिए गीतों में गाया जाने वाला भाटी सरदार हैमहड़ाक जिसने पुनाण नदी के किनारे की झाड़ियों में काँटे-काँटे मोती पिरोकर याचकों को लूटने जाने की खुली छूट दे रखी थी, पटियाला राजवंश का पूर्व पुरुष था। पटियाला के स्वर्गीय महाराजा भूपेन्द्रसिंह की हार्दिक आकांक्षा थी कि अपने सजातीय राजपूत पुरुषों के साथ वे खान-पान और वैवाहिक सम्बन्धों में आबद्ध बने रहें। खरवा के राव गोपालसिंह बहुत पहले से ही प्रान्तीयता का भेद भुलाकर भारतवर्ष के समस्त क्षत्रिय-कुलों की एकता के पक्षधर थे। महाराजा के निमंत्रण पर राव गोपालसिंह जब भी पटियाला जाते, प्रमुखता से इसी संदर्भ में चर्चा होती रहती थी।

राव गोपालसिंह के परामर्श पर महाराजा ने सौदा बारहठ किशोरसिंह को राज्य के इतिहास विभाग का अध्यक्ष बनाकर अपने वंश के पूर्व इतिहास की प्रमाणिक खोज के कार्य पर नियुक्त किया था। गुजरात प्रदेश के सोरठ प्रान्तान्तर्गत जामनगर (नयानगर) के शासक जाम साहब जाड़ेचा राजपूत हैं। जाड़ेचा अपने को श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब के वंशज यदुवंशी मानते हैं। इसी प्रकार जैसलमेर के ''उत्तरभड़ कींवाड़'' भाटी भी अपने को यादव श्रीकृष्ण के वंशज ही मानते हैं। सोरठ के राजपूत राज्यों के दौरे के समय राव गोपालसिंह खरवा तत्कालीन महाराजा जाम साहब से भी मिले, जो विचारों में उदार और प्रगतिशील नरेश थे। राव गोपालसिंह ने उनसे अनुरोध किया था कि पटियाला नरेश भी भाटी राजपूत हैं और उनकी इच्छा है कि आप और वे एक थाल में शामिल भोजन करके अन्य राजपूत वंशों के लिए प्रशंसनीय उदाहरण पेश करें।

मराठा राजपूत एकता- दक्षिण के मराठा और उत्तर के राजपूत प्रारम्भ में एक ही क्षत्रिय जाति में उत्पन्न दो सैनिक वर्ग थे। मराठों में राजपूतों की भाँति ही पंवार, चालुक्य, भौंसले, चव्वाण, घोरपड़े (दोनों सिसोदिया) जाधव (यादव) वंश विद्यमान हैं। उत्तर भारत के क्षत्रिय (राजपूत) मराठों को देश भेद के कारण अपने से भिन्न मानने लगे थे। उनके उद्‌गम के इतिहास पर दृष्टि डालें तो घोरपड़े और भौंसले जो क्रमशः मधोल और सतार के शासक थे, चित्तौड़ छोड़कर उधर आए, राणा सज्जनसिंह के वंशज हैं, अतः वे सिसोदिया कुलोत्पन्न हैं। जाधव-देवगिरी के प्राचीन यादव वंश के प्रतिनिधि थे। बड़ोदा के गायकवाड़ दक्षिण के राष्ट्रकूटों की एक शाखा में थे। पंवार अपने को मालवा के प्रतापी-प्रमारों के वंशज आज भी मानते हैं। मोरे-मौर्या वंश की किसी एक शाखा के प्रतिनिधि थे। मराठा चव्वाण भी भड़ौच (भृगुकच्छ) पर पाँचवी-छठी शताब्दी में शासन करने वाले चौहान राजाओं के वंशज रहे हों तो आश्चर्य नहीं। बाड़ी के सावन्त और निम्बाल कर मराठा वंशों के कुल गोत्राचार वही हैं जो राजपूत कुलों में पाए जाते हैं। इस प्रकार दक्षिण के मराठे और उत्तर के राजपूत के कुल-गौत्र प्रायः एक से ही थे। देश के तत्कालिक इतिहासविज्ञ विनायक चिन्तामणि वैद्य, मुधोल के महाराजा तथा आंग्रे ने राजपूत और मराठों को एक ही क्षत्रिय जाति के रूप में प्रस्थापित करने का विचार किया था। बड़ोदा के महाराजा गायकवाड़ तथा मुधोल के महाराजा ने उक्त कार्य में यथेष्ट सहयोग दिया। इतिहास के

इस कार्य (सन् 1930 ई.) के दौरान महाराणा फतेहसिंह का देहान्त हो गया व यह योजना अपूर्ण ही रह गई।

देशी नरेश और गोपालसिंह खरवा– भारतवर्ष और मुख्यकर राजपूताना के महाराजागण राव गोपालसिंह खरवा को आदर की दृष्टि से देखते थे। बड़ौदा के महाराज सियाजीराव गायकवाड़ के साथ उनका क्रांति संघर्ष के समय से ही अति निकट का सम्बन्ध बना हुआ था, पटियाला (पंजाब) के महाराजा और धोलपुर के राणा के साथ उनका मैत्रीपूर्ण सौहार्द सम्बन्ध था। मेवाड़ के महाराणा फतेहसिंह उनके प्रशंसक थे। उनकी मान्यता थी कि राजपूताना में कोई वीर राजपूत है तो वह राव गोपालसिंह खरवा ही है। अंग्रेजी में सम्पादित ''महाराणा कुम्भा'' नामक ऐतिहासिक शोध ग्रन्थ के प्रकाशनार्थ राव गोपालसिंह के अनुरोध पर ही महाराणा ने आर्थिक सहायता की। सन् 1930 ई. में जून मास में महाराणा का स्वर्गवास होने पर शोक संवेदना प्रगट करने हेतु गोपालसिंह उदयपुर गए और महाराणा भूपालसिंह के राज्याभिषेक के अवसर पर खरवा अस्तबल में उत्पन्न और प्रशिक्षित उत्तम नस्ल का 'तुर्रा' नामक घोड़ा और 151 रुपये महाराणा को भेंट किए थे। बीकानेर के महाराजा गंगासिंह भी राव गोपालसिंह पर स्नेह रखते और उन्हें यथोचित सम्मान देते थे। सन् 1937 ई. में आयोजित महाराजा के स्वर्ण–जुबली समारोह पर राव साहब गये थे और उनको राजकीय सम्मान के साथ बीकानेर एवं देशनोक में रखा। सन् 1939 ई. के अप्रेल में राव गोपालसिंह के परलोकवासी होने पर उन्होंने कहा था, उनके जैसा राजूपत जन्मते अब देर लगेगी। उनके शब्द थे–''राव गोपालसिंह जिस्या राजपूत जलमताँ अब जेज लागसी।'' पूर्वाधुनिक राजस्थान के लेखक डॉ. रघुवीरसिंह सीतामऊ (मालवा) हमारे प्राचीन इतिहास की याद दिलाते हुए कहते थे–सम्राट चन्द्रगुप्त मोर्य, सेनापति पुष्यमित्र शुंग, गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य, विष्णुवर्द्धन, यशोधर्मा प्रतिहार, सम्राट नागभट्ट प्रथम आदि उन सभी महान् विजेताओं ने यवनों, ग्रीकों, शकों, हूणों और अरबों जैसे दुर्दान्त क्रूर आक्रान्ताओं को शस्त्र शक्ति के बल पर ही पराभूत करके देश की पश्चिमोत्तरी सीमाओं–काबुल, कंधार, सिन्ध की रक्षा की थी। प्रथम महायुद्ध सन् 1914 के सितम्बर मास में आरम्भ हुआ था। उस काल जर्मनी के शासक सम्राट केशर (केजर) थे। बीकानेर के महाराजा गंगासिंह महान विचारक और कूटनीतिज्ञ नरेश थे। उनका निधन सन् 1943 ई. के प्रारम्भ काल में हो चुका था। महान् इतिहासविद् डॉ. रघुवीरसिंह सीतामऊ ने महाराजा के व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते हुए लिखा था ''राजस्थान का सर्वमान्य प्रमुख शासक उठ गया। उसकी नीति से मतभेद हो सकता है। उसकी कार्यप्रणाली की आलोचना की जा सकती है, परन्तु उसके व्यक्तित्व की महत्ता के बारे में किसी भी प्रकार दो मत नहीं हो सकते–आधुनिक बीकानेर के उस निर्माता ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर राजस्थान ही नहीं समस्त भारत का मुख उज्ज्वल किया था। भारतीय महत्त्व प्राप्त–राजस्थानी नरेशों की जो परम्परा आमेर के राजा मानसिंह से प्रारम्भ हुई थी, महाराजा गंगासिंह के साथ उसका सर्वदा के लिए अन्त हो गया।'' जोधपुर के मुखिया के नाते महाराजा का वे असीम आदर करते थे। महाराजा उम्मेदसिंह की महाराणी भटियाणी जी के विदेश यात्रा प्रोग्राम का राव गोपालसिंह ने तीव्र विरोध किया था। किशनगढ़ राजघराने से खरवा के शासकों का परम्परागत अति निकट का सम्बन्ध था। खरवा रियासत के संस्थापक राव सकतसिंह और किशनगढ़ राज्य के निर्माता राजा किशनसिंह जोधपुर नरेश मोटा राजा उदयसिंह के पुत्र थे। अलवर के महाराजा राजर्षिदेव सवाई जयसिंह, झालावाड़ नरेश राजेन्द्रसिंह राव गोपालसिंह की महत्ता का मूल्यांकन करते हुए उनके देशभक्त और बलिदानी कार्यों के प्रसंशक थे। कोटा, बून्दी, डूंगरपुर, शाहपुरा, रतलाम, सैलाना और सीतामऊ के राजा–महाराजा भी राव गोपालसिंह को राजपूत जाति के त्यागी, तपस्वी नेता के रूप में मानते और आदर करते थे। राव गोपालसिंह के निधन (1939 ई.) पर उन नरेशों द्वारा भेजे गए संवेदना संदेशों के माध्यम से उनके भाव–विचारों पर यथेष्ठ प्रकाश पड़ता है।

भक्त राव गोपालसिंह– भक्ति और रजपूती का अभिन्न सम्बन्ध रहा है। मौत से टकराने वाला राजपूत

भगवान शालिगराम का सिरस्त्राण (पगड़ी) में रखकर युद्धों में उतरता था। ईश्वर में आस्था (श्रद्धा) ही वीर का असली धर्म होता है। राव गोपालसिंह जैसे वीर थे, वैसे ही भगवद् भक्त भी थे। कर्मयोग और भक्तियोग की ही उन्होंने साधना की थी। जीवन के अन्तिम वर्षों में संसार के सभी अन्य प्रपंचों को त्याग कर वे भगवद् आराधना में लीन हो चुके थे। भगवान् श्रीकृष्ण के वे अनन्य उपासक थे। कुरुक्षेत्र के युद्ध में गीता के अमर संदेश के उद्घोषक और युद्ध में प्रलयंकर बने भीष्म पितामह पर रथ चक्र उठाने वाले योगेश्वर श्रीकृष्ण का लोकाभिराम रूप उनके मनमन्दिर में स्थापित हो चुका था। भगवत् कृपा पूर्वजन्म के संस्कार और अविरल एकाग्र अभ्यास ने उनकी चित्तवृत्तियों को ध्यान की पूर्णावस्था तक पहुँचा दिया था। दिन में अनेक बार पढ़ते अथवा बातें करते-करते अचानक ही वे ध्यान लीन हो जाते थे। यह उनका दैनिक कार्यक्रम सा बन गया था। यों वे दिन में तीन बार आसन लगाकर ध्यान में बैठते थे। उस समय नेत्र बन्द किए उनके मुख-मण्डल पर मुस्कान की रेखा प्रस्फुटित हो जाती थी। मानो वे भगवान् का रूप देखते हुए आनन्दातिरेक से गद्गद् हो रहे हैं। उन वर्षों में उनके अध्ययन के विषय थे-भक्तियोग और कर्मयोग। राम-कृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द और योगीराज अरविन्द घोष के ग्रंथों के अवलोकन में ही उनका अधिकांश पठनकाल व्यतीत होता था। उनके जीवन का चरम लक्ष्य रजपूती और भक्ति का समन्वय एवं ज्ञान और भक्ति का उपार्जन ही था। क्षात्रधर्म के कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलते हुए भक्ति का प्रयोग करना और ईश्वर की अनन्य शरण में चले जाना ही गीता-प्रतिपादित कर्मयोग है। इसी को राजयोग कहते हैं। राव गोपालसिंह द्वारा रचित इस दोहे से उनके विचारों की अभिव्यक्ति पूर्णरूपेण प्रकट होती है।

तव चरण चित्त रू देशहित, उर साहस असि हाथ।
क्षात्र धर्म भव भक्ति पथ, अचल देहु यदुनाथ।।

उक्त स्वरचित दोहा ही उनके लिए श्रुति वाक्य था। रजपूती और भक्ति ही क्षत्रिय के लिए अन्तिम श्रेयस्कर साध्य मार्ग है।

महाप्रयाण- जीवन के अन्तिम दिनों में वे रुग्ण रहने लगे। हृदय की धड़कन, पेट की खराबी और स्नायविक दुर्बलता उन्हें सताने लगी। सन् 1939 ई. (वि.सं. 1995) के माघ मास में उनके पेट में पीड़ा उठी। चिकित्सा हेतु वे अजमेर आए और जयपुर रोड़ स्थित किशनगढ़ महाराजा की कोठी में ठहरे। अजमेर के लब्ध प्रतिष्ठित चिकित्सक डॉक्टर अम्बालाल उनके पारिवारिक चिकित्सक थे। उन्होंने राव साहब के शरीर का डाक्टरी परीक्षण किया और कराया। उनकी आँतों में केन्सर के लक्षण पाए गए। लगातार दो महीनों तक भूमि को शय्या बनाकर उस भीषण रोग से संघर्ष करते रहे और अन्त में वि.सं. 1995 में चैत्र कृष्णा सप्तमी (12 मार्च, 1939) को उस युग के उस महामानव ने परलोक गमन किया। उनकी मृत्यु योगीराजों के लिए ईर्ष्या का विषय थी। उनकी मृत्यु क्या थी? भगवत् भक्ति का सचेतन इन्द्रियों और मन बुद्धि के साथ वैकुण्ठ प्रयाण था। उनकी मृत्यु दिन के 3 बजे हुई। अजमेर से उनका पार्थिव शरीर उसी समय खरवा ले जाया गया और हजारों लोगों की उपस्थिति में शक्ति सागर तालाब के पाल पर जहाँ खरवा के शासकों का (देवकुल है) श्मशान है, उनके दाह-संस्कार की क्रिया सम्पन्न हुई। शक्ति सागर तालाब की पाल पर उनकी धर्मपत्नी राणी छत्रपाल कुमारी गौड़जी ने छत्री बनवाई आज भी खरवा में वहाँ मेला लगता है। प्रसिद्ध पत्रकार स्व. झाबरमल शर्मा जसरापुर (खेतड़ी) ने कल्याण के ''गीता तत्वांक'' में एक भक्त के महान् प्रस्थान का चमत्कारिक दृश्य शीर्षक लेख प्रकाशित कराया था।

राव गोपालसिंह का व्यक्तित्व- राव गोपालसिंह का व्यक्तित्व बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न था। संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थ रामायण, महाभारत, गीता आदि का ज्ञान था, अंग्रेजी धारावाहक बोलते थे और इतिहास विषयक ज्ञान गहरा था। उस समय की राजनीति में उनका उल्लेखनीय स्थान था। कूटनीति में चतुर थे। क्षात्रत्व के वे प्रतिमूर्ति थे। क्षात्रधर्म को वे स्वधर्म मानते थे। ''स्वधर्मे-निधनम् श्रेय'' के गीतोक्त वाक्य के मर्म को उन्होंने खूब समझ

रखा था। क्षात्रधर्म के तेज, वीरता, निडरता, साहस, परित्राण, दया, क्षमा, औदार्य आदि गुणों का उनमें अद्‌भुत सम्मिश्रण था। अहिंसा और हिंसा भेद को उन्होंने सूक्ष्मता से समझ रखा था। अन्याय और उत्पीड़न को मिटाने और दुष्ट व अत्याचारियों को नष्ट करने हेतु किया गया कार्य हिंसा नहीं माना जाता है, यह उनकी मान्यता थी। ''परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दृष्टकृताम्'' का असली भावार्थ यही है कि सज्जनों की रक्षा करना और अत्याचारियों व दुष्टजनों का विनाश करना ही क्षत्रिय का धर्म है, स्वकर्तव्य है। उसमें हिंसा मानना कायरता और नपुंसकता का द्योतक है। अश्व संचालन, शस्त्र संचालन एवं जंगलों में एकाकी भ्रमण करते रहने जैसे परम्परागत क्षत्रियोचित व्यवहार उनमें विद्यमान था। सन् 1915 ई. में आयोजित क्रान्ति के समय नसीराबाद सैनिक छावनी पर आक्रमण करने की योजना, टॉड़गढ़ की नजरबंदी तोड़ने का अति साहसिक कार्य, सलेमाबाद मन्दिर में अंग्रेज सेना द्वारा घेरे जाने के समय 500 सैनिकों से अकेले लोहा लेने की तत्परता तथा सुदूर काश्मीर भूमि पर हिन्दू हितों की रक्षार्थ मरने-मारने का व्रत लेकर कूच करना आदि कार्य अनकी रजपूती के ज्वलंत एवं जीवन्त प्रमाण हैं। यही वे शानदार स्थल थे जहाँ उनकी राजपूती के दर्शन किए जा सकते थे। वे जैसे वीर थे, वैसे ही समर्पित भगवद् भक्त थे। राजपूती परम्परा और भारतीय संस्कृति पर उन्हें गर्व था। देशभक्ति और त्याग में वे किसी से कम नहीं थे। उनकी ईश भक्ति और साधु सेवा सराहनीय थी। मानवोचित दुर्बलताओं के बावजूद भी वे अपने समय के एक असाधारण पुरुष थे। उस भव्य दर्शनीय शरीर के भीतर क्षत्रियोचित्त गुणों से अलंकृत लोह-पुरुष विराजमान था। राव गोपालसिंह का विवाह संयुक्त प्रान्त के राय बरेली जिले में स्थित शिवगढ़ के राजा विश्वेश्वर सिंह की पुत्री राजकुमारी छत्रपाल कँवर के साथ वि.सं. 1947 में सम्पन्न हुआ था। शिवगढ़ संयुक्त प्रान्त में गौड़ राजपूतों का एक समृद्ध एवं प्रतिष्ठित राज्य था। राणी गौड़जी के गर्भ से चार पुत्र सन्तान हुई। कुँवर गणपतसिंह उनकी चतुर्थ सन्तान थे, जो बाद में खरवा के शासक बनाए गए।

क्षात्रधर्म का आराधक राव गोपालसिंह खरवा–अन्तिम अभिलाषा

नाथ तव चरण शरण चित्त लाया।
माया मोह के पूप पड़ा था, मिथ्या भ्रमहि भुलाया।।
काम क्रोध मद मोह लोभ ने, मो मति को भरमाया।
महा कुटिल मोह जाल जगत का, फंदा डाल फंसाया।।
चेत्ता चित्त अचेत तव, ज्ञान मार्ग दरसाया।
क्षत्रियोचित व्रत चहत हूँ, तव पद रज की छाया।।

दोहा

तव चरण चित्त रू देश हित, उर साहस असि हाथ।
क्षात्रधर्म भव भक्ति पथ, अचल देहुँ यदुनाथ।।

– गोपालसिंह खरवा

अन्तिम दृश्य– सहसा बोल उठे– कहने लगे ''डाक्टर साहब! अब आप लोग नहीं दिख रहे हैं। श्रीकृष्ण दिख रहे हैं। ये श्रीकृष्ण खड़े हैं। मैं उनके चरणों में लीन हो रहा हूँ। हरि ओम तत्सत-हरि ओम-बस एक सैकिण्ड''- महाप्रस्थान हो गया। हम सब विस्मय नेत्रों से देखते रह गए।

''धन्य आधुनिक भीष्म! धन्य मृत्युंजय! धन्य! तुम्हारी इस मौत पर दुनिया की बादशाहत कुरवान है!''

– कल्याण का गीता तत्त्वांक

राष्ट्र का यथार्थ निर्माण इतिहास के वे संस्मरण करते हैं जिनमें उस राष्ट्र के प्रमुख स्त्रियों व पुरुषों के महान चरित्रों का वर्णन रहता है। यथार्थ में राष्ट्र उन थोड़े से पुरुषों या स्त्रियों में निवास करता है, जो कुछ सोचने और कुछ करने की क्षमता रखते हैं।

– सेठ गोविन्ददास

व्यर्थ है जब तक प्राणों में.....!

– स्व. सूरतसिंह कालवा

जीवन में कभी-कभी हम अच्छे संकल्प लेते हैं, लेकिन वे संकल्प पूरे नहीं हो पाते। असफलता का कारण हम भाग्य और भगवान में देखते हैं, स्वयं अपने ही भीतर असफलता के कारण खोजना हम जरूरी नहीं समझते।

राजा दशरथ ने संकल्प लिया था कि अयोध्या के सिंहासन पर राम को आसीन करेंगे, किन्तु ऐसा नहीं हो सका। राजा दशरथ के जीवन में धर्म है, सत्कर्म है, किन्तु वैराग्य नहीं। रामराज्य की घोषणा करने के बाद एक रात सामने थी। दशरथ के सामने प्रश्न था यह रात वे किस रानी के महल में गुजारें। उनके स्वभाव में जो असक्ति थी वह सामने आ गई, वे उस रात रानी कैकेयी के महल में पहुँच गए। कैकयी क्रिया की, कौशल्या ज्ञान की और सुमित्रा उपासना की प्रतीक है। वे यदि कौशल्या या सुमित्रा के महल में जाते तो यह नोबत नहीं आती। दृश्य यह बना कि जब वे कैकेयी के महल में गए और कैकेयी ने वरदान माँगा तब दशरथ का वैराग्य जागा। तात्पर्य यह कि कैकेयी के प्रति उनका जो मोह था उसके कारण वे अपना संकल्प पूरा नहीं कर पाए।

यह हम सभी के जीवन का सत्य है। हम रामराज्य यानी हृदय के सिंहासन पर राम को बैठाना चाहते हैं, लेकिन क्रिया की आसक्ति से जुड़ जाते हैं। जीवन में हम कई बार ऐसे निर्णय ले लेते हैं, जो गलत साबित हो जाते हैं। इसलिए कोई भी काम करें, उसके मूल में आसक्ति की जगह निष्कामता लाएँ। क्रिया बुरी नहीं है, बुरी तो है क्रिया के पीछे की नीयत।

अर्जुन दुविधा में फँस गया। मैं क्या करूँ, क्या न करूँ? समरांगण में दोनों सेनाएँ आमने सामने खड़ी हैं, अर्जुन दुविधा में है-क्या करूँ? युद्ध करूंगा तो कुल का नाश होगा, युद्ध न करूँ तो कर्तव्य से च्युत हो जाऊँगा, दोनों स्थितियों में मेरे कल्याण में बाधा लगेगी। कल्याण भी चाहते हैं हम, और मोह आसक्ति में भी फँसे हैं। ऐसी स्थिति में संकल्प पूरा कैसे हो? एक कदम आगे तो बढ़ा दिया, किन्तु जब परिवार में संसार में फँसे तो हमारा संकल्प पीछे छूट गया। अब विवश हैं क्या करें, कैसे करें?

तो क्या करें? गीता के दूसरे अध्याय का सारांश तो है कि अपने विवेक को महत्त्व दें, बुद्धि को नहीं कोई तर्क भी विवशता के लिए नहीं, अपने विवेक को टटोलें और अपने कर्तव्य का पालन करें, बस, यही उपाय है तभी चिन्ता मिटेगी, दुविधा हटेगी। परिस्थितियाँ तो जीवन है तब तक साथ रहेंगी, पर बदलती रहती हैं, सदा नहीं रहती, आती जाती रहती हैं। इसलिए फल की आसक्ति छोड़कर फल की प्राप्ति में, अप्राप्ति में निर्विकार (सम) रहने का अभ्यास करें, तभी कोई दुविधा कोई हलचल नहीं रहेगी। बस, लोकसंग्रह के लिए तत्परता से अपने कर्तव्य का पालन करते रहें।

सामाजिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है-कर्तव्यबोध, दायित्वबोध, चेतना का जागरण। कर्तव्य की चेतना, दायित्व की चेतना जगनी चाहिए। दण्ड से, यंत्रणा से, आलोचना से, अवहेलना से क्या कभी कोई जीवनभर के लिए नियंत्रण स्वीकार करेगा? भय से किसी से कब तक काम लिया जा सकता है। स्वामी विवेकानन्द का कहना था-**''सामान्य जन अपने भाव का प्रतीक देखना चाहता है''**। केसरिया ध्वज हमारे ध्येय का प्रतीक है, स्वधर्म-क्षात्रधर्म का कोई रूप या आकार नहीं है। केसरिया ध्वज में स्वधर्म-क्षात्रधर्म का रूप आरोपित किया गया है। प्रतीक का अर्थ है-उस ओर जाना, समीप पहुँचना। प्रतीक एकमात्र एक Design नहीं है वरन् संस्थागत संकल्प की कलात्मक अभिव्यक्ति है। कर्तव्यों का निर्वाह, मर्यादा का पोषण और उद्देश्य की उपलब्धि, ये सभी तो निहित होते हैं इस चिन्ह में। एक वर्दी की तरह यह अवचेतन में संस्थान की प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए एक प्रेरणा, एक सम्बल और उत्साह के रूप में सदा साथ रहता है।

श्री क्षत्रिय युवक संघ में बुद्धिमान विवेकशील

कद्रदानों की जरूरत है जो ''भाव'' को समझ सकें केवल शब्दों को नहीं, जिनके भाव वाणी में नहीं, उनके कर्म में प्रकट हों। आजकल हमारे भाव पीछे छूट गए लगते हैं वाणी का बोलबाला है। हमारी सारी नादानियाँ संघ सहन करता है, इस आशा के साथ कि भविष्य में कभी तो हम गम्भीरता धारण करेंगे। सामाजिकता का भाव पनपे इसके लिए हम ऐसी व्यवस्था करें कि स्वयं अपने हाथ से काम करें, करके दिखाएँ, आज्ञाएँ नहीं। अपनी लकीर बड़ी बनानी, रचनात्मक व्यवस्था का आधार है समानता। जमीन उपजाऊ न हो तो श्रेष्ठ बीज भी बेकार। शिक्षार्थी जिज्ञासु हो साथ में निष्कपट भी हो। शिक्षक की हाजरी में असहज अप्रसन्न क्योंकि काम करना पड़ रहा है- शिक्षक कर रहा है इसलिए। वरना शिक्षक की गैरहाजरी में प्रसन्न सहज क्योंकि अब कुछ करना नहीं पड़ रहा, करने वाले और लोग हैं। जिज्ञासा और निष्कपटता दोनों आवश्यक गुण हैं।

समय के साथ दौड़ पाना तो शायद सम्भव नहीं है पर समय के साथ चला तो जा सकता है। हम अपनी चाह के अनुसार एक गतिशील व्यवस्था का निर्माण करें यह हमारी आकाँक्षा है। हमारी गति निर्बाध हो, आरामदेह हो, समाज का प्रत्येक घटक हमसे जुड़े यही तो हमारी साधना का हेतु है और इसे हम प्राप्त करेंगे, यह हमारा संकल्प है। इसलिए अपना अहं, दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, लोभ, सुख-सुविधा, पक्षपात, अपना-पराया का भाव त्यागना पड़ेगा ये सभी आसुरी सम्पत्ति के गुण हैं इनसे बोझिल क्यों रहें? दैवी सम्पत्ति के गुणों को धारण करें-अभय, सत्य, अक्रोध, दया, निष्पक्षता ये हैं-देवी सम्पत्ति के गुण।

लक्ष्मण ने माया का स्वरूप पूछा तो भगवान ने समझाया-''मैं अरु मोर तोर में माया। जेहिं बस कीन्हें जीव निकाया।'' अहंता (मैं पन) और ममता (मेरा पन) यह माया का स्वरूप है अपना स्वरूप नहीं। व्यवहार में भी हम देखते हैं कि-मनुष्य जितनी अहंता, ममता करता है उतना ही वह संसार में आदर नहीं पाता और जितनी अहंता ममता छोड़ता है उतना ही वह संसार में आदर पाता है। स्थान पाता है। साधक का भी यही अनुभव होता है कि वह साधना में ज्यों-ज्यों ऊँचा बढता है त्यों-त्यों अहंता-ममता छूटती जाती है। अपना जो होना पन है (सत्ता है) वह निरपेक्ष है, उसमें परिवर्तन नहीं होता, परिवर्तन मैं पन (अहंता) में ही होता है जैसे मैं शिक्षक हूँ मैं योग्य हूँ, मैं विद्वान हूँ, मैं शिक्षक के ''इनर सर्किल'' में हूँ मैं विशेष हूँ आदि।

यही धारणा यदि बनी रहती है तो....तो कैसा निर्माण? कैसा संकल्प? और...और कैसी साधना? सोचा तो है कि-

सोयेगी जो सारी दुनिया तब भी मैं तो जागूंगा।
ज्योति जो जलाई उसको जीते जी जलाऊँगा।।

किन्तु....किन्तु। पू. तनसिंहजी ने लिखा-

''व्यर्थ है जब तक प्राणों में वो गीत न छलके

कौनसा गीत? गीत तो पू. तनसिंहजी के ही लिखे हैं-

फूल खिला हूँ तेरे चमन में
कल का खिला हूँ यह चिन्ता ना करना
अपना हूँ सपना हूँ युगों से हूँ तेरे हृदय का...।

घाव पड़े तो मरहम लगाना भटकूँ कभी तो रस्ते लगाना

गहरे समन्दर का जो माँझी बनाया मौसम को क्यों नहीं साथी बनाया।।

और

संघ है जीवन का सिद्धान्त कर्म में निहित पतन का अन्त कर्म पथ चलें खून से लीप, दीप से चलें जलाते दीप दीप में स्नेह, स्नेह में ज्योति, ज्योति पर चढे पतंगे आन ज्ञान का कर दूँ नव-आलोक, शक्ति से नदियों को दूँ रोक करूँ मैं पर्वत के दो टूक, क्षात्र का मंत्र सुनाऊँ फूंक बढे यह संघ, संघ में शक्ति, शक्ति में है सामर्थ्य महान

होना है बलिदान।।

किन्तु-

आराम कहाँ जब जीवन में अरमान अधूरे रह जाते।
दिल की धड़कन शेष रहे हाथों के तोते उड़ जाते ।।

❖

वीर दलपतसिंह शेखावत

– गिरधारीसिंह डोभाड़ा

आज के राजनीतिज्ञ लोग यदा-कदा कहा करते हैं कि शौर्य या शूरवीरता किसी कौम की बपौती नहीं है। लेकिन प्राचीनकाल से लेकर मध्यकाल और अर्वाचीन काल में राजपूत या क्षत्रियों ने वीरता का जो प्रदर्शन अल्पमात्रा में शस्त्र-सरंजाम होने पर भी किया है, वैसी वीरता का प्रदर्शन आज तक किसी जाति विशेष ने नहीं किया। राजपूत जब-जब समर में उतरते थे, पूर्ण मनोबल और पूर्ण मनोयोग से उतरते थे। वे कभी भी जय-पराजय का विचार नहीं करते थे लेकिन पूर्ण शक्ति से लड़ते थे। उनका तो एक ही लक्ष्य रहता था, पूर्ण ताकत से लड़ना है और युद्ध के मैदान से पीछे नहीं हटना है। मुस्लिम काल में जब तोपों का इस्तेमाल होने लगा और राजपूतों के पास तोपें नहीं थी फिर भी राजपूत तलवार और भाले लेकर, अश्वों पर सवार होकर, बरसते तोपों के गोलों और बरसती बन्दूक गोलियों के सामने दुश्मन दल पर टूट पड़ते थे और खरबूजों की तरह दुश्मनों के सिर काट गिराते थे। दुश्मन दल के योद्धाओं के शवों के ढेर कर देते थे। युद्ध मैदान से पीछे न हटना, समर में से जान बचाकर भाग खड़े न होना लेकिन वीरगति को प्राप्त होना उनके कुल का जन्माधिकार था। आजाद भारत में चीन के साथ युद्ध में मेजर शैतानसिंहजी और पश्चिमी सीमा के युद्ध में पीरूसिंहजी जैसे राजपूत योद्धाओं ने शहीद होकर परमवीरता का प्रदर्शन किया। ऐसे ही प्रथम विश्व युद्ध में परमवीरता दिखाकर मेजर दलपतसिंह शेखावत शहादत को पाकर, अमर हो गये।

रामायण और महाभारत से पूर्व सवारी में, रथ खींचने में और युद्धों में सवारी के रूप में अश्वों का उपयोग होता आ रहा है। सशस्त्र सैन्य दलों में घोड़ों के उपयोग का इतिहास बहुत लम्बा है। लेकिन रणभूमि में अश्वों को सवारी व सहायक के रूप में उपयोग करने की भारतीय रीत 225 वर्ष पुरानी है। सन् 1796 में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत में अश्वारोही सैनिकों की पहली टुकड़ी की रचना की। जिसके सैनिक कसे हुए और घोड़े पानीदार थे। काफी वर्षों बाद अश्वारोही दल का विस्तार हुआ, जिसमें 1857 तक ब्रिटिश हिन्द की सेवा में केवेलरी अश्व दल की मद्रास, बंगाल, जोधपुर, मैसूर, हैदराबाद इत्यादि रेजिमेन्टों का निर्माण हुआ। जिनमें अंग्रेज अफसरों के साथ भारतीय अश्वारोही थे।

सेना में अश्वारोही दल का गठन होने के कई वर्षों बाद तक भारतीय अश्वारोहियों के लिए विशेष वीरता दिखाने का कोई अवसर नहीं आया था। सन् 1918 के प्रथम विश्वयुद्ध में जोधपुर रेजिमेन्ट के भारतीय अश्वारोहियों को वीरता की बुलंदियाँ छूने का मौका मिला। इस विश्व-विग्रह में ब्रिटेन की ओर से जोधपुर रेजिमेन्ट के राजपूत अश्वारोहियों को मध्य एशिया में तुर्की के सामने लड़ने भेजा गया। जहाँ इजिप्ट और सीरिया के मोर्चे पर भारतीय अश्वारोहियों ने घमासान युद्ध करके तुर्की सेना को पीछे हटने के लिये मजबूर किया। व्यूहात्मक और सामरिक दृष्टि से महत्त्व का मोर्चा हाइफा बन्दरगाह का था। वहाँ तुर्की और जर्मन सेना ने बड़ी संख्या में सैनिक जमा करके मध्य एशिया के समुद्री मार्ग को रोक लिया था। इस नाकाबन्दी को तोड़ने के लिये ब्रिटिश सेना ने हाइफा पर झंझावाती हमला करने का अभियान हाथ में लिया। इस मिशन के सूत्रधार अंग्रेज अफसर ने इस हमले की जिम्मेवारी जोधपुर की अश्वारोही सेना के मेजर दलपतसिंह शेखावत को सौंपी। मेजर दलपतसिंह ने एक क्षत्रिय वीर की हैसियत से यह चुनौती स्वीकार की। जोधपुर रेजिमेन्ट और मैसूर रेजिमेन्ट के सशस्त्र अश्वारोही सिपाही मेजर दलपतसिंह की अगवानी में हाइफा बन्दरगाह की ओर निकल पड़े। अभी तो माउण्ट कार्वेल नामक पहाड़ी प्रदेश के नजदीक ही

पहुँच पाए थे कि जर्मन और तुर्की सेना ने संयुक्त रूप से मशीनगनों द्वारा फायरिंग शुरू कर दी। दुश्मनों की मशीनगनों की गोलियों का सामना करने के लिए मेजर दलपतसिंह के अश्वारोही सैनिकों के पास भाले और तलवारों के अलावा अन्य कोई शस्त्र नहीं थे। फिर भी सीना तानकर उन गोलियों का सामना किया गया। शत्रु दल की ओर से जबरदस्त गोलीबारी होने की खबर पठारी छावनी के ब्रिटिश अफसर को मिली। अंग्रेज अफसर ने मेजर दलपतसिंह को मोर्चा छोड़कर वापस लौट आने का आदेश भेजा। यह आदेश मेजर दलपतसिंह की राजपूती आन को एक चुनौती थी। मेजर दलपतसिंह ने राजपूत शौर्य और शान के अनुकूल जवाब भेजा कि–'समर भूमि से पीछे हटना हमारी राजपूती रीत नहीं है। राजपूत के लिए तो रणभूमि में विजय या वीरगति, दो ही विकल्प हैं।'

सितम्बर 23, सन् 1918 के दिन भारतीय अश्वों और उनके जाँबाज राजपूत सिपाहियों ने युद्ध की तवारीख में साहस का अद्वितीय प्रकरण लिखा। तुर्की-जर्मन मशीन गनों और तोप गोलों का मुकाबला भालों और तलवारों से ही करने का हुआ फिर भी 'बैटल ऑफ हाइफा' में मेजर दलपतसिंह के सिपाहियों ने अकल्पनीय वीरता का प्रदर्शन किया। कम से कम 100 शत्रुओं को यम के द्वार भेज दिया और 1350 को युद्ध कैदी के रूप में बन्दी बना लिया। दलपतसिंह के जाँबाज अश्वारोहियों का आक्रमण इतना तेज था कि एक घण्टे में तो हाइफा पर विजय ध्वज लहरा दिया। लेकिन इस शौर्य प्रदर्शन में दुश्मनों की गोलीबारी में मेजर दलपतसिंह शेखावत वीरगति को प्राप्त हुए। काफी घोड़े और कुछ अश्वारोही भी वीरगति को प्राप्त हुए। हमारे मन में यह प्रश्न उठता है कि मामूली वेतन पाने वाले ये वीर राजपूत पराये देश के लिए और परायी भूमि पर इस प्रकार क्यों युद्ध करते हैं? वीर राजपूतों के लिये तो उनकी रेजिमेन्ट, उनका देश और कर्तव्य पालन उनका धर्म होता है। न केवल वर्तमान सीमित भारत में ही बल्कि पूरे आर्यावर्त में, पूरे भारतवर्ष में वीर राजपूतों के शौर्य प्रदर्शन के फूल बिखरे पड़े हैं। पूरे भारतवर्ष का चप्पा-चप्पा राजपूतों के शौर्य और शहादत के खून से रंगा पड़ा है।

जिधर से भी गुजरता हूँ मुझे आवाज है आती।
यहाँ गुलशन गए मुरझा मगर खुशबू नहीं जाती।।
पुकारो न सोई घाटियाँ यहाँ पर वीर सोते हैं।
कैसे रोक लूं आँसू यहाँ इतिहास रोते हैं।।

बैटल ऑफ हाइफा में साहस, शौर्य और समर्पण की मिसाल कायम करने पर ब्रिटिश हिन्द की सरकार ने दोनें रेजिमेन्टों, जोधपुर और मैसूर को कई बहादुरी पदक और खिताबों से सम्मानित किया। सैनिकों की स्मृति में स्मारक बनाया गया है। क्षत्रियों की फर्जपरस्ती की मिशाल अन्य किसी जाति में पाना असम्भव नहीं तो मुश्किल अवश्य है। जय क्षात्रधर्म!

❖

हमारे दुखी और विपदग्रस्त होने का कारण हमारे ग्रह नहीं वरन हम स्वयं होते हैं। अनेक लोग अपने भाग्य को कोसते नहीं थकते, यद्यपि वास्तव में उनके दुख का कारण उनमें उद्योग, दृढ संकल्प और कार्यारम्भ का अभाव होता है। उनके लिये जीवन के साथ युद्ध करके कोई उपयोगी पदार्थ प्राप्त करने में लग जाने की अपेक्षा शिकायत करते रहना आसान होता है। वे उच्च स्वर से विलाप करते हैं कि जीवन में हमारे लिये कभी अच्छे दिन नहीं आए, इत्यादि और इस प्रकार वे अपनी त्रुटियों को ढांपते हैं।

– संतराम

विचार-सरिता

(एकषष्टिः लहरी)

– विचारक

हमारे धर्मग्रन्थों में इस ब्रह्माण्ड में चौदह लोकों का वर्णन आता है। उन सब लोकों के विभिन्न नाम और भिन्न-भिन्न व्यवस्थाएँ और भिन्न-भिन्न क्रियाकलापों का वर्णन किया गया है। चौदह लोकों में सुख और दुःख रूपी भोगों का वर्णन भी आता है। हम रह रहे हैं, इसे मृत्युलोक कहा जाता है। यथा नाम तथा काम।

अन्य लोकों में क्या कुछ होता है यह हमारे लिए अज्ञात है पर जिस लोक में हम रह रहे हैं उस मृत्युलोक के बारे में हमें ज्ञात होना ही चाहिये कि इसका यह नाम क्यों रखा गया है? जैसा कि नाम से ही विदित होता है कि यहाँ जीवन नहीं हो सकता। यहाँ तो केवल मृत्यु ही है। जिस प्रकार औषधालय का नाम लेते ही हमें ज्ञात होता है कि वहाँ औषधियों का भण्डार है। विद्यालय में विद्या के बारे में शिक्षण के अतिरिक्त कुछ नहीं हो सकता। ठीक इसी प्रकार मृत्युलोक में भी केवल और केवल मृत्यु का कारोबार चल रहा है।

यहाँ हर पल मृत्यु घटित हो रही है। मृत्यु का अविरल प्रवाह चल रहा है। हम जिसे जीवन कह रहे हैं वह वास्तव में जीवन नहीं अपितु मृत्यु ही है। गर्भ से बाहर आते ही उस प्राणी की मृत्यु की शृंखला शुरू हो जाती है। अविरल चल रही मृत्यु की शृंखला इतनी तेज गतिमान है कि हमें मृत्यु की प्रतीति न होकर जीवन की प्रतीति होती रहती है। जिस प्रकार चांदनी रात में बादलों के चलने पर भी देखने वाले को लगता है कि चन्द्रमा चल रहा है। रेल्वे स्टेशन पर पास-पास खड़ी दो रेलगाड़ियों में से एक के चलते ही दूसरी खड़ी गाड़ी के मुसाफिरों को लगता है कि हमारी ट्रेन चल पड़ी। जबकि चलने वाली गाड़ी दूसरी है। ऐसे ही जन्म से लेकर मृत्यु तक की अवधि को हम जिसे जीवन कहते हैं वह वास्तव में जीवन है ही नहीं वह तो मृत्यु का अविरल प्रवाह है। प्रारब्ध के अन्तिम क्षण के बाद हम जिसे मृत्यु कहते हैं वह तो पूर्व में घट रही मृत्यु की सूचना मात्र है।

इस लोक में ऐसा कोई दृश्य ही नहीं जिसे दुबारा वैसा का वैसा देखा जा सके। जब सतत् प्रतिपल जहाँ मृत्यु का ताण्डव चल रहा हो वहाँ कोई जीवन की आशा करे वह या तो कोई जीवनमुक्त महात्मा ही होगा या पागल। इस लोक में शाश्वत कुछ भी नहीं है। यदि शाश्वत है तो एकमात्र मृत्यु ही शाश्वत है। मृत्युलोक में आकर यदि कोई रहने की कल्पना करता है तो वह मूर्ख के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

कई बार हम किसी स्नेही की मृत्यु का समाचार सुनकर आश्चर्य करते हैं कि वह घड़ी भर पहले तो बिल्कुल स्वस्थ था। मेरे से फोन पर बात भी हुई थी, अचानक वह मर कैसे गया। असल में उसका शरीर तो जन्म से लेकर अन्तिम श्वास तक मरने की प्रक्रिया से गुजर ही रहा था। अब तो मात्र मृत्यु की खबर लगी है। इस संसार में रहने वाले हम सब मृत्यु रूपी गाड़ी के मुसाफिर हैं। गाड़ी में बैठना जन्म है और गाड़ी को छोड़कर उतरना मृत्यु है। जब गाड़ी में हम बैठते हैं तो सीट के लिए आपाधापी होती है। वहाँ किसी से मित्रता भी हो जाती है तो शत्रुता भी। पूरी यात्रा में कहीं कोई राजनीति की गोष्ठी में संलग्न है, कहीं कोई ताश या शतरंज में मशगूल है। कहीं कोई चाय नाश्ता ले रहा है तो कोई लंच या डीनर ले रहा है। पास में कोई इन सभी से बेखबर होकर नींद ले रहा है। मृत्यु के भुलावे के लिए चाहे हम कितने भी बेखबरी के आयाम अपनालें पर मृत्यु ठीक समय पर और निश्चित जगह पर मिल ही जाएगी। उससे आज तक कोई भी बच नहीं पाया है।

मृत्यु गर्भावस्था से लेकर जीवन की किसी भी अवस्था में आ सकती है। डॉक्टर शरीर की किसी व्याधि का उपचार तो कर सकता है पर मृत्यु रूपी व्याधि का उसके पास कोई उपचार नहीं इसलिए एक दिन वह भी मृत्यु का आहार बन जाता है। जिन्दगी तो एक छलावा है,

फरेब है, धोखा है। पर मृत्यु ने आज तक किसी को धोखा नहीं दिया। वह निश्चित समय पर निश्चित स्थान पर अवश्य ही आती है। इसलिए समझदारी इसी में है कि हम उससे भयभीत न हों, उससे बचने का पुरुषार्थ छोड़ दें और उसका आलिंगन करने की तैयारी में जुट जाएँ। उसका स्वागत करके उसका वरण करना सीखें। इस मोहमाया की फरेबी जिन्दगी का मोह छोड़कर मृत्यु के आगोश में समा जाने की विद्या सीख लें तो जिन्दगी की यात्रा भी आमोद-प्रमोद और आनन्द की यात्रा बन जायेगी।

यहाँ सुबह से शाम तक की बिना रुकी यात्रा ही तो मृत्यु की यात्रा है। जिसमें पौ जन्म है, प्रभात बचपन, दोपहर जवानी, संध्या बुढ़ापा और रात मृत्यु है। रात मृत्यु की कहानी का उपसंहार है, विराम है, पटाक्षेप है। नींद छोटी मृत्यु है और मृत्यु बड़ी नींद है। नींद मृत्यु का पूर्वाभ्यास है और मृत्यु चिरनिद्रा है। हमारे पास जीवन हर पल नहीं है, अपितु मृत्यु हर पल है। श्वास जीवन है, उच्छवास मृत्यु है। यह भ्रान्ति मत पाल लेना कि आदमी बुढ़ा होने पर मरता है, वह तो हर पल मृत्यु के समीप जा रहा है। आदमी जन्म लेने के साथ ही मरना शुरू हो जाता है। इसलिए जिन्दगी पर नहीं मृत्यु पर भरोसा करो। जीवन का हर पल मृत्यु के साये में है। जीवन धोखा है, मृत्यु सत्य है। मृत्युलोक में एक ही वस्तु सत्य है और वह है मृत्यु।

आदमी मृत्यु से बेखबर है विस्मृत है तभी तो लूट-खसोट, धोखा, फरेबी, व्यभिचार और भ्रष्टाचार दिनोंदिन बढ़ रहा है। यदि उसे पता चल जाए की कल का उगता हुआ सूर्य तुम नहीं देख पाओगे तो वह न किसी से झगड़ा करेगा न मोह और प्यार करेगा। वह तो बस अपने ईष्ट को ही याद करेगा। इसलिए मृत्यु को हर पल स्मृति में रखें ताकि अनैतिक पाप कर्मों से बचा जा सके। मृत्यु का सतत स्मरण हमें पापों और वासनाओं से मुक्ति दिलायेगा। आपको सात्विक व धार्मिक बनाने की प्रेरणा देगा।

मृत्युलोक में रहते हुए मृत्यु से कैसे बचें इसके लिये पहले मृत्यु को समझना होगा कि यहाँ मृत्यु किसकी होती है। सीधी भाषा में समझें तो सामान्यतया हम मरने का मतलब समाप्ति से लेते हैं कि अमुक खत्म हो गया। यहाँ यह ख्याल में लेने जैसी बात है कि मर क्या गया है? सन्त व शास्त्र कहते हैं कि यहाँ मरता कुछ भी नहीं है केवल आकृतियाँ बदलती हैं। गीता के अनुसार आत्मा का धर्म मरणोधर्मी है ही नहीं। आत्मा को न किसी शस्त्र से छेदन किया जा सकता है, न किसी अग्नास्त्र से जलाया जा सकता है तथा न गीला व सुखाया जा सकता है। वह तो आकाशवत एक रस सर्वत्र विद्यमान है। शास्त्रकार कहते हैं कि ये सभी शरीर तीन शरीरों से विद्यमान हैं। जो जन्म होता है उस समय कारण शरीर की अविद्या के कारण सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर के खोल के माध्यम से बाहर आता है। वही सूक्ष्म शरीर अपने प्रारब्ध जन्य कर्मों के अनुसार स्थूल रूपी चोले को ओढ़कर चेष्टाएँ करता है और जब बुद्धि का संकल्प पूरा हो जाता है तो इस स्थूल शरीर को यहीं छोड़कर कर्मों से प्रेरित होकर किसी नवीन देह में प्रवेश कर जाता है। इस प्रकार इससे यह सिद्ध होता है कि मरण उसका हुआ जिसका पूर्व में जन्म हुआ था। अमर आत्मा में न जन्म हुआ और न मरण हुआ। वह तो जन्म और मृत्यु की प्रकाशक है। साक्षी है।

आदमी का दुर्भाग्य है कि वह देहाभ्यास के कारण देह की मृत्यु को ही अपनी मृत्यु मान रहा है। जैसे किसी का कुर्ता फट जाए और पहनने वाला कहे कि मैं तो फट गया। कुर्ता जल जाए तो कहे कि मैं जल गया। उसे अपने अस्तित्व का बोध न होने के कारण वह पत्थरों में भगवान ढूंढ़ता है। उसे पत्थरों के देवी-देवताओं पर तो भरोसा है पर अपने अमर आत्मा के होने पर भरोसा ही नहीं। जीवन पर्यन्त मंदिर और मस्जिदों में नाक रगड़ता रहता है और देहासक्ति छूटती नहीं तथा जीवन के अन्तिम क्षण में नहीं मरने वाले को भी मरने की भ्रान्ति बनी रहती है। जिसके परिणाम स्वरूप लक्ष चौरासी योनियों में जन्म-मरण की संसृति बनी रहती है और वह कभी भी निर्वाण को प्राप्त हो ही नहीं सकता।

यदि वह अपने आपको पहचान जाए कि मैं तीन

(शेष पृष्ठ 28 पर)

परमात्माप्राप्ति के साधन

– रश्मि रामदेरिया

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्धया धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्।।

अर्थात्–धैर्ययक्त बुद्धि के द्वारा संसार से धीरे–धीरे उपराम हो जाए और मन (बुद्धि) को परमात्मस्वरूप में सम्यक् प्रकार से स्थापन करके फिर कुछ भी चिन्तन न करें। एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा के सिवाय कुछ भी नहीं है–ऐसा निश्चय करके फिर कुछ भी चिन्तन न करें। हम जहाँ हैं वहीं रहने का स्वभाव बना लें।

अगर कुछ भी चिन्तन करेंगे तो संसार में स्थिति होगी और कुछ भी चिन्तन नहीं करेंगे तो प्रभु में स्थिति होगी। विश्राम से साधक को कर्तव्य–पालन की, स्वयं को जानने की तथा परमात्मा को मानने की सामर्थ्य प्राप्त हो जाती है, जिसके प्राप्त होने पर मानव जीवन सफल हो जाता है।

हो जग में ज्योति जगानी जीवन में साध बड़ी हो
जुगनू की चमक से क्या हो अन्तर में आग भरी हो
अङ्गार लो, संसार को, कुछ ऐसी ही मनुहार दो
ये नैया बड़ी पुरानी और डगमग करती भैया
तुम कैसे पार लगोगे बिन हिम्मत बिन खेवैया

अगर साधक सर्वथा निर्दोष होना चाहता है तो उसको संयोगजन्य सुख की कामना का सर्वथा त्याग करना होगा क्योंकि संपूर्ण दोष सुख की कामना से ही पैदा होते हैं।

साधक को चाहिये कि वह अपने मत का अनुसरण तो करे, पर उसको पकड़े नहीं अर्थात् उसका आग्रह न रखे। राग–द्वेष होने से सत्य की खोज में बड़ी भारी बाधा लग जाती है। प्रेम संपूर्ण साधनों का अन्तिम फल अर्थात् साध्य है।

मनुष्य और साधक पर्याय हैं। जो साधक नहीं है, वह वास्तव में मनुष्य भी नहीं है।

''Through listening one acquires immense power. It exerts a positive influence on one's temperament''

चुप होना, शान्त होना, कुछ न करना एक बहुत बड़ा साधन है, जिसका पता बहुतों को नहीं है। कुछ करने से संसार की प्राप्ति होती है और कुछ न करने से प्रभु की प्राप्ति होती है। साधक प्रत्येक क्रिया से पहले और अन्त में शान्त हो जाए।

चित को बदलना या सुधारना टेढ़ी खीर है पर अगर व्यक्ति थोड़ी बुद्धिमानी का उपयोग करे तो उसकी वक्रता को सरल–सीधा किया जा सकता है। स्वस्थ सोच के साथ सकारात्मक सोच के स्वामी बनें। शरीर स्थूल है, मन उसके भीतर बैठा उसका संचालक है। मनुष्य का मन और बुद्धि ही उसकी चैतन्यधर्मिता को अभिव्यक्त करते हैं। सकारात्मक सोच ही मनुष्य का पहला धर्म है और यही उसकी आराधना का मंत्र। आवेश और आक्रोश के क्षणों में हमारी जो भी सोच और निर्णय होंगे वे कभी विवेक और बुद्धिमत्तापूर्ण हो ही नहीं सकते।

जो सब जगह विद्यमान है, जिसका कहीं भी अभाव नहीं है, उसकी प्राप्ति में देरी का कारण यही है कि उसको हम चाहते नहीं। केवल उनकी इच्छा की कमी है। उनकी आवश्यकता की कभी विस्मृति न हो। लोग पागल कहें, कुछ भी कहें परवाह न करें। केवल एक ही लालसा हो जाएगी तो अन्य सभी इच्छाएँ मिट जायेंगी। अन्य इच्छाएँ मिटते ही वह एक लालसा परमात्मा की प्राप्ति पूरी हो जाएगी। मेरे को कुछ लेना नहीं है, प्रत्युत देना ही देना है–ऐसा विचार करने से मनुष्य साधक बन जाता है। साधक का स्वरूप चिन्मय सत्तामात्र है और सत्तामात्र में कोई क्रिया नहीं होती। साधक शरीर नहीं होता है। साधक को सबसे पहले यह बात मान लेनी चाहिये कि शरीर मेरे स्वरूप नहीं है, चाहे समझ में आये या न आये। ज्ञान में विवेक मुख्य है और भक्ति में श्रद्धा–विश्वास मुख्य है।

प्रेम भगति जल बिनु रघुराई।
अभिअंतर मल कबहुँ न जाई।।''

भक्ति के बिना भीतर का सूक्ष्म मल (अहम्) मिटता नहीं। वह मुक्ति में तो बाधक नहीं होता पर दार्शनिकों और उनके दर्शनों में मतभेद पैदा करता है। जब वह सूक्ष्म मल मिट जाता है तब मतभेद नहीं रहता। इसलिए भक्त ही वास्तविक ज्ञानी हैं। हमारी सत्ता (होनापन) अहंकार के अधीन नहीं, बुद्धि के अधीन नहीं है, मन के अधीन नहीं है, इन्द्रियों के अधीन नहीं है और शरीर के अधीन भी नहीं है। हम निराकारस्वरूप से हैं, पर शरीर रूप से अपने को साकार मानते हैं। यह भूल है।

सकल जग में अंधियारा है, भरोसा नाथ तुम्हारा है।।
खूब तुजुरबा कर लिया थोथी जग की प्रीत।
वक्त सचाई का नीं अब समय हुवा विपरीत।।
इसी से तुम्हें पुकारा है, भरोसा नाथ तुम्हारा है।
शीघ्र सुबुद्धि दीजिये, तुमसो कवन दुराव।
खता देख कर भी मेरी प्रभु, तजो न आप स्वभाव।।
निवेदन यही हमारा है, भरोसा नाथ तुम्हारा है।।

शुद्ध और शाश्वत प्रेम जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। ध्यान के द्वारा अपनी चेतना के तार प्रभु से मिलाये रखता है तो अपने आप ही अपनी नियति के अनुसार जीवन जीता है। वास्तव में परमात्मा की प्राप्ति में शरीर अथवा संसार की किंचिन्मात्र भी जरूरत नहीं है। परमात्मा अपने में है अत: कुछ न करने से ही उनका अनुभव होगा। नामजप, कीर्तन आदि साधन अवश्य करने चाहिये क्योंकि इनको करने से कुछ न करने की सामर्थ्य आती है। हम प्रभु के हैं-इस सत्य पर साधक को दृढ़ निश्चय करना चाहिये। साधक के लिए सबसे मूल्यवान वस्तुएँ दो ही हैं- भगवदाश्रय और विश्राम। नित्य परमात्मसत्ता में सदा-सर्वदा निरंतर स्थित रहना ही परमात्मा के लिए विश्राम करना है। शरीर और संसार की सहायता से प्रभु की प्राप्ति नहीं होती भगवदाश्रय और विश्राम आते ही मानव-जीवन पूर्ण हो जाता है।

❖

विचार-सरिता

पृष्ठ 26 का शेष

काल में मरणाधर्मी हूँ ही नहीं। मैं तो काल का महाकाल हूँ। मेरा मृत्यु कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती।इस पंच भौतिक देह से मेरा कोई सम्बन्ध ही नहीं। इसमें होने वाले समस्त व्यापारों व विकारों को जानने वाला मैं चेतन आत्मा इससे भिन्न हूँ। सद्गुरु की कृपा से इस प्रकार का साक्षीभाव जब जागृत हो जाता है तब वही जीवन-काल कहा जा सकता है। उससे पूर्व का काल जीवन नहीं कहा जा सकता वह तो जैसा पीछे बताया जा चुका है कि वह तो मरने की सतत् प्रकियामात्र थी। इस प्रकार के साक्षीभाव में स्थिति पा जानेका नाम ही जीवन है। ऐसे जीवन में सदैव अमृत बरसता रहता है वहाँ मृत्यु की परिभाषा ही खत्म हो जाती है। वो जीवन जीवन ही क्या जिसमें राग-द्वेष, काम-क्रोध आदि की तरंगें उठती रहती हों। वह जीवन जीवन नहीं जिसमें अपना और पराये की संज्ञा हो। जहाँ मैं, तू यह और वह का भाव ही समाप्त हो जाए उसी का नाम जीवन है।

आप गीता, भागवत, रामायण तथा उपनिषदों को पढ़ें या न पढ़ें। आप राम, रहीम, कबीर, रैदास और मीरां की जीवनी पढ़ें या न पढ़ें पर मैं कहता हूँ कि आप अपने आपकी जीवनी अवश्य पढ़ लेना और यह अवश्य जान लेना कि आप कौन हैं। अपने आपकी जीवनी पढ़ लेने के बाद भी यदि आपको लगे कि मैं तो यह नाम रूप वाला शरीर ही हूँ तो समझ लेना आपको अभी अपने आपका बोध हुआ ही नहीं है। अभी आप अपने आपसे बेखबर हैं ऐसे में तत्काल किसी ऐसे फकीर के पास पहुँच जाना जो आपके असली होने का बोध करा सके। आपकी आयु का तेल देह रूपी दीपक में धीरे-धीरे जलकर खत्म होने को है। देह का दीपक बुझे उससे पहले ''अहंब्रह्मास्मि'' का आयुध उठा लेना ताकि मौत भी आपका कुछ नहीं बिगाड़ सके। ऐसे में अब आपके पास ऐसा अपना कहे जाने वाला अपने-आप के अतिरिक्त कुछ शेष रह भी नहीं जाता है जिसे मृत्यु छीन सके। इसलिए आप निर्भय होकर मौत की छाती पर पाँव रखकर अमरत्व को प्राप्त हो जाना जहाँ काल की छाया भी नहीं पहुँच सकती।

ओम् शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!!

पहला सुख निरोगी काया

– ब्रिगेडियर मोहनलाल (से.नि.)

हमारा शरीर प्रकृति का दिया हुआ अमूल्य उपहार है। इसे पूर्णतया स्वस्थ रखना ही इस जगत में प्रथम सुख है। हमारे शरीर में भगवान ने उपयुक्त प्रतिरोध क्षमता भर रखी है, जो हमारी 85 प्रतिशत बीमारियों से स्वत: ही लड़ सकती है। प्रसव के पश्चात् माँ का पीला दूध बच्चे की प्रतिरोध क्षमता दस गुणा बढा देता है। इसके बाद इस प्रतिरोधक क्षमता को पर्याप्त मात्रा में अपने शरीर में बनाये रखना हमारा कर्तव्य है ताकि जगत का सुख हासिल करने के लिए हमारी काया निरोगी रहे।

हमारा शरीर पाँच तत्वों से बना है, जिनमें से 70 प्रतिशत तत्त्व पानी है। अत: मुख्यता पानी और अन्य शारीरिक तत्वों को सही मात्रा में तथा सही तरीके से उपयोग में लेना आवश्यक है। सूर्य नमस्कार, प्राणायाम व पूजा-प्रार्थना हमारी बपौती है जो कि हमारे शरीर को निरोगी रखने में सहायक है। इसी तरह सुसंस्कारिक जीवन, सुव्यवस्थित जीवनशैली, सात्विक खान-पान, सात्विक विचार व व्यवहार आदि की भी हमारे शरीर को स्वस्थ रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ दिमाग यानी सात्विक विचार और सात्विक भावनाएँ। अर्थात् स्वस्थ शरीर की प्रतिरोधक क्षमता, आध्यात्मिक प्राणशक्ति और आभामण्डल (Aura) इतना सक्षम हो कि हम किसी भी तरह की बीमारी, यहाँ तक कि महामारी से भी लड़ने में सफल हों। इन प्रतिरोधक स्रोतों का विस्तार पूर्वक विश्लेषण आगे किया गया है।

प्राणायाम् : प्राणायाम हमारी बपौती है। जब तक श्वास चालू है तब तक शरीर में फेफड़ों की श्वास-प्रश्वास की शक्ति उत्तेजित होती है। प्राणायाम से हम अपने श्वास-प्रश्वास की गति को यथाशक्ति नियंत्रित कर सकते हैं। 'ऊँकारा' प्राणायाम अनोखी ध्वनि है जो हमारे नाक में कंपन (नाइट्रिक ऑक्साइड) पैदा करती है जिसमें हर बीमारी के जीवाणुओं/बैक्टीरिया को समाप्त करने की शक्ति है। अत: प्रतिदिन प्राणायाम करना आवश्यक है। प्राणायाम से जठराग्नि भी प्रदीप्त होती है, जिससे उदर रोगों का निवारण होता है और शरीर में प्रतिरोधक क्षमता भरपूर रहती है। अत: प्राणायाम शारीरिक स्वास्थ्य व आध्यात्मिकता का साधक है।

पूजा-प्रार्थना : भगवान की पूजा हमारी आत्मा को शुद्ध करती है और चेतना जाग्रत करती है। पूजा-प्रार्थना से हमें आदि शक्ति की कृपा प्राप्त होती है जिससे हमारा दु:ख-दर्द दूर हो जाता है।

सेवा भावना व सकारात्मक सोच : दूसरों की सेवा व परमार्थ करने से सुसंस्कार विकसित होते हैं। दिल में सदा शुद्ध भावना रखना, दूसरों के दिलों से जुड़े रहना, स्वच्छ और सरल जीवनशैली बिताना आवश्यक है। इससे अच्छी आदतें व सुसंस्कार विकसित होते हैं। हमारे चारों तरफ उपस्थित जीव-जन्तु, पशु पक्षी, पेड़-पौधे आदि हमारे लिए आभामण्डल बनाते हैं जो कि हमारी प्राण-शक्ति है। हमारा शरीर इस प्राण-शक्ति को ग्रहण करता है, जिससे हम स्वस्थ रहते हैं। अत: हमें इन जीवों की सेवा करनी चाहिए। इसी तरह दूसरों को सदा बेहतर महसूस कराना, बुरी स्थिति में भी अच्छाई देखना, हर समस्या का समाधान ढूंढना, अपने साथियों से सदा गुण हासिल करना आदि सकारात्मक विचार हैं। सकारात्मक सोच से मनुष्य सदा खुश रहता है व सुखी रहता है। अत: सकारात्मक सोच व परमार्थ की भावना से हम स्वस्थ और सुखी रहते हैं।

हमारा आहार : उपयुक्त आहार नियमित रूप से सेवन करना और हमारे उदर को अन्दर से साफ रखना हमारे स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य है।

शरीर जितना अन्दर से साफ होगा, उतनी ही शरीर की प्रतिरोधक क्षमता होगी और शरीर स्वस्थ रहेगा। हमने अपनी आदतें बिगाड़ दी हैं। स्वाद के लिए तामसिक व

हानिकारक आहार का सेवन करना, नशा करना आदि आदतें डाल रखी हैं। जिनके कारण हमारा पेट दिन-रात जहर भरा आहार पचाने में ही व्यस्त रहता है, और अन्दर से पेट को साफ करने और कीटाणुओं को मारने का समय ही नहीं मिलता। इससे शरीर बीमारियों से ग्रस्त हो जाता है और 35-40 वर्ष के युवाओं में मोटापा आ जाता है। अत: हमारे शरीर की प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है। इसलिए हमें अपनी आदतें बदलनी चाहिए और महर्षि बाग्भट्ट जी की सलाह का पालन करना चाहिए जो इस युग में इस प्रकार है :-

- घर का खाना खायें। खाना पकाने के दो घड़ी (यानी 48 मिनट) के अन्दर खाना खा लें। खाना खाते समय बोलें नहीं व प्रसन्न अवस्था में खाना खायें।
- यात्रा के समय या कार्यस्थल पर टिफिन ले जाने की आदत डालें। बाहर का आहार लेना पड़े तो फल, जूस या सामान्य आहार लें।
- नाश्ता हल्का लें या नाश्ते में मौसम में आने वाले फल व सब्जियाँ ही खायें ताकि आसानी से पच सके।
- सुबह सूर्य उदय से ढ़ाई घण्टे तक हमारी जठराग्नि तीव्र होती है और स्नान करने के बाद पित्त बढ़ता है जिससे जठराग्नि बहुत तीव्र हो जाती है। अत: नाश्ता सुबह 9.30 बजे तक स्नान करने के बाद कर लें। एक भोजन से दूसरे भोजन के बीच 4 से 8 घण्टे का अन्तराल रखें। हल्का व फलप्रद खाना जल्दी पचता है और अन्नप्रद खाना देर से पचता है। बीच में कुछ नहीं खायें। सूर्यास्त के बाद कुछ नहीं खायें।
- दिन में सिर्फ एक बार यानी दिन के समय अनाज का आहार लें और अनाज से चार गुणा अधिक सब्जी, दाल, इही, सलाद का उपयोग करें। भोजन करते समय डकार हमारे भोजन के पूर्ण और हाजमे की संतुष्टि का संकेत है।
- शाम का खाना हल्का लें और सूर्यास्त से पहले लें यदि सूर्यास्त के बाद खाना है तो पहले एक प्लेट सलाद या फ्रूट खायें और बाद में हल्का भोजन सोने के दो घण्टा पहले लें। शाम के भोजन के बाद खुली हवा में घूमें।
- खाना बनाने में एल्यूमीनियम का बर्तन, प्रेशर कुकर व माइक्रोवेव का उपयोग नहीं करें।
- भोजन बनाने में कच्ची घाणी का शुद्ध तिल्ली या सरसों या मूंगफली का तेल इस्तेमाल करें। रिफाइण्ड ऑयल नहीं प्रयोग करें।
- खाने में देशी घी का ही इस्तेमाल करें।
- विश्व की सबसे मंहगी दवा 'लार' है जो प्रकृति ने हमें अनमोल दी है, इसे पान या तम्बाकू के साथ व्यर्थ नहीं करें।

उपवास : ''लंघनम् परम औषधि'', उपवास करने से पेट की सफाई हो जाती है। अत: महीने में कम से कम दो उपवास करें। हमारे पूर्वज एकादशी व पूर्णमासी के दिन उपवास करते आये हैं। इसके अतिरिक्त यदि हम सूर्यास्त से पहले शाम का खाना खायें और नाश्ता सुबह 9.30 बजे से पहले करें तो 15-16 घण्टे के दौरान खाना पच जाएगा और पेट की सफाई होने से शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बनी रहेगी।

जल सेवन : हमारा शरीर पाँच तत्वों से बना है, उनमें से पानी बहुत ही महत्त्वपूर्ण तत्व है, क्योंकि 70 प्रतिशत शरीर पानी से बना है। हमारे शरीर को, मौसम के अनुकूल, 3 से 4 लीटर पानी की प्रतिदिन आवश्यकता होती है।

महर्षि बाग्भट्ट जी ने जल सेवन के बारे में जो सलाह दी है उसे भी अवश्य पालन करना चाहिए ताकि हमारा शरीर स्वस्थ रहे।

- सदा गुन-गुना पानी पीयें। गर्मियों में मटके का पानी पीयें। पानी हमेशा घूंट-घूंट करके नीचे बैठकर पीयें।
- सुबह उठते ही 2-3 ग्लास गुन-गुना पानी पीयें, हमारे बासी मुँह की 'लार' अमृत के समान है, अत: घूंट-घूंट पानी पीते समय 'लार' को साथ में पीयें। 'बैड टी' पहले मत पीयें।
- एक ग्लास पानी नहाने के पहले पीयें।
- एक ग्लास पानी खाना खाने के 40 मिनट पहले पीयें।
- खाना खाने के तुरन्त बाद पानी नहीं पीयें। मुँह साफ

(कुल्ला) करने के लिए आधा ग्लास पानी पी सकते हैं। खाना खाने के 60 मिनट या 90 मिनट बाद एक ग्लास पानी पीयें।

- सोने से पहले एक ग्लास पानी पीयें।

दिनचर्या : संतुलित जीवन के लिए आवश्यक है कि हमारी दिनचर्या भी संतुलित हो ताकि हम निरोगी रहें, और जिन्दगी को सुख से बिता सकें। संतुलित दिनचर्या के लिए कुछ सुझाव इस प्रकार हैं :-

- **समय पर उठना :** सुबह मस्तिष्क ज्यादा सक्रिय होता है और शरीर ऊर्जायुक्त होता है। अतः ब्रह्म मुहूर्त (सुबह 4.00 से 6.00 बजे) में उठिये ताकि प्राणायाम, पूजा-प्रार्थना आदि कर सकें।
- **समय पर सोना :** सोने का समय ऐसा तय करें कि 06 से 08 घण्टे की गहरी नींद हो जाए। सोते समय सिर पूर्व या दक्षिण की तरफ रखें व बाईं करवट सोयें।
- **दिन में भी आराम का समय निकालें :** पूरा दिन मशीन की तरह काम करने की बजाए, जब भी समय मिले तब आधा या एक घण्टा झपकी ले लीजिये। उठने के बाद आनन्द महसूस होगा।
- **व्यायाम/खेल/घूमने का समय निकालें :** खेल या व्यायाम या घूमने का शौक रखें, इससे आपकी मांसपेशियाँ मजबूत होंगी और शरीर के हर हिस्से में रक्त का प्रवाह बढ़ेगा और आपका मन भी हल्का हो जाएगा। इसके साथ सूर्य से विटामिन ''डी'' भी जरूर हासिल करें।
- **हँसी-खुशी का वातावरण बनाये रखें :** हँसने से गुस्सा गायब हो जाता है और खुशी छा जाती है। अतः जिन्दादिल मित्रों से मिलिये, बच्चों के साथ खेल-खेल में हँसिये, परिवार में हँसी-खुशी का वातावरण बनाये रखें। हँसी-खुशी के वातावरण की हमारे स्वस्थ रहने में अहम् भूमिका है।
- **सप्ताह में एक दिन छुट्टी जरूर मनायें :** सप्ताह में एक दिन आपका पूर्णतया खाली समय (Leisure Time) होना चाहिए। उस दिन आप परिवार व मित्रों के साथ आत्मीयता व मेलजोल बढ़ायें, यह हमारे मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य है।

सांसारिक सुख के लिए निरोगी शरीर आवश्यक है। निरोगी या स्वस्थ शरीर के लिए अपनी प्रतिरोधक क्षमता, प्राणायाम, आध्यात्मिक ध्यान, खान-पान व संतुलित दिनचर्या अति आवश्यक है। भगवान की कृपा हमें निरोगी रखे।

जीवन क्या है? जीवन केवल जीना, खाना, सोना और मर जाना नहीं है। यह तो पशुओं का जीवन है। मानव जीवन में ये सभी प्रवृत्तियाँ होती हैं क्योंकि वह भी तो पशु है। पर इनके उपरान्त कुछ और भी होता है उनमें। कुछ ऐसी मनोवृत्तियाँ होती हैं जो प्रकृति के साथ हमारे मेल में सहायक बन जाती हैं। जिन प्रवृत्तियों में प्रकृति के साथ हमारा सामञ्जस्य बढता है, वे वांछनीय होती हैं। अहंकार, क्रोध या द्वेष हमारे मन की बाधक प्रवृत्तियाँ हैं। यदि हम इनको बेरोकटोक चलने देते हैं तो निःसन्देह वे हमें नाश और पतन की ओर ले जाएँगी। इसलिए हमें उनकी लगाम रोकनी पड़ती है, उन पर संयम रखना पड़ता है। जिससे वे अपनी सीमा से बाहर न जा सकें। हम उन पर जितना कठोर संयम रख सकते हैं, उतना ही मंगलमय हमारा जीवन हो सकता है।

– मुंशी प्रेमचन्द

समय ही धन है

– भँवरसिंह रेड़ी

एक दिन-रात में कुल 24 घण्टे होते हैं और उन्हीं 24 घण्टों में हमें हर क्षेत्र में भागीदारी निभाकर हमें हमारा उत्कृष्ट जीवन बनाना है। अधिकतर बन्धु समय का रोना रोकर हर क्षेत्र में पिछड़ जाते हैं और कुछ लोग उन्हीं 24 घण्टों में इतना कुछ कर जाते हैं कि दूसरों को उनके जीवन मूल्यों को देखकर दाँतों तले अंगुली दबानी पड़ जाती है और हमें वह प्रकृति का चमत्कार लगने लगता है। हमें सामान्य परिस्थितियों अर्थात् सामान्य हालातों में समय का महत्त्व समझ में नहीं आता है बल्कि विशेष परिस्थितियों में समय की कीमत समझ में आती है। जब परीक्षा की घड़ी नजदीक आती है तब समय की कीमत समझ में आती है, तब समय नष्ट करने का दोष समझ में आता है और समय नष्ट करने वाली सभी गतिविधियाँ नकारा सिद्ध मानी जाती हैं।

इस प्रकार जो ऐसे क्षणों में भी समय को नहीं पहचान पाते वे आखिर तनाव या अवसाद के शिकार होते हैं और परीक्षा की अग्नि परीक्षा में सफल नहीं हो सकते। समय निरन्तर बहने वाला प्रवाह है और कभी भी एक क्षण के लिए भी नहीं रुकता। चाहे कैसी भी सर्दी, गर्मी, वर्षा, आँधी, भूकम्प, महामारी या कैसा भी सुख-चैन आनन्द से परिपूर्ण समय हो लेकिन वह रुकता नहीं है। अत: समय की कोई कीमत नहीं आँक सकता, समय अमूल्य है। वह बीत गया सो बीत गया, इसी संदर्भ में बीता हुआ समय वापिस नहीं लौटता इसे मारवाड़ी भाषा में एक दोहे में दर्शाया गया है-

उजड़ खेड़ा फिर बसे, निर्धनिया धन होय।
बीत्यो समय न बावड़े-मुआ न जीवे कोय।।

अर्थात् बीता हुआ समय कभी वापिस नहीं लौट सकता। कहते हैं कि महान कृष्ण भक्त सूरदास से प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण ने मनचाहा वरदान माँगने को कहा तो सूरदासजी ने अपना बाल्यकाल लौटाने को कहा तो कृष्ण जी ने असमर्थता प्रकट करते हुए कहा यह प्रकृति के प्रतिकूल है अत: असम्भव है। बस, ट्रेन या हवाई यात्रा करते समय हम कुछ पल विलम्ब कर देते हैं और बस, ट्रेन या हवाई जहाज निकल जाता है तो समय की कीमत समझ में आती है। अत: जीवन में ऐसे अनेक अवसर आते हैं जिनमें समय को यों ही जाया करते रहते हैं और फिर पछताते रहते हैं।

इस स्वर्णमय जीवन में मिले अमूल्य समय को हम यों ही निरर्थक गप्पों, उपहासों, अन्यों की बुराइयों, अपनी प्रशंसाओं और चुहल बाजियों में बीता देते हैं और जीवन के उत्तरार्द्ध में पछताते हैं।

कुछ नहीं कर पाने का दोष अन्यों के असहयोग पर या अन्य कारण बताकर अपने आपको निर्दोष व लाचार बताने का प्रयास करते हैं जबकि गलती वातस्व में किसी की नहीं स्वयं की ही होती है।

जो निर्धारित समय पर प्रत्येक कार्य को करते रहते हैं, हाथ में आये अवसर को व्यर्थ नहीं जाने देते वे हमेशा अपना जीवन आनन्द से व्यतीत करते हैं। समय कभी नहीं रुकता और समय किसी को भी माफ नहीं करता। समय धारा प्रवाह चलता आया है और चलता रहेगा।

हम जानते नहीं, समझते नहीं कि बूँद-बूँद से घड़ा भरता है तो बूँद-बूँद टपकने से घड़ा खाली भी होता है। प्रत्येक श्वास में जीवन अवसान की ओर बढ रहा है, जन्मते ही उल्टी गिनती प्रारम्भ हो जाती है। हम जन्म दिवस मनाते हैं कि अमुक 30 वर्ष का हो गया, वास्तव में 30 वर्ष उसकी आयु बीत चुकी है और वह 30 वर्ष मर चुका है अर्थात् वह 30 वर्ष छोटा हो चुका है।

यदि इस चीज का एहसास मनुष्य को हो जाये तो जीवन के हर पल का सदुपयोग करते हुए काल की साधना महाकाल की आराधना हो जाये। यदि हम चारों ओर नजर उठाकर देखेंगे तो पायेंगे कि प्रकृति का हर घटक समय के अनुसार चल रहा है।

सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, नक्षत्र, ऋतुएँ सब अपने नियम क्रम से गतिशील हैं। इनमें थोड़ा-सा भी व्यतिक्रम नहीं होता। एक इन्सान ही है जो पहले अपनी मनमानी करता है और फिर प्रतिकूल परिणाम मिलने पर शिकायत करता है।

यदि हम प्रकृति के नियमानुसार चलते तो हमारी दिनचर्या नियमित होती । समय पर सोना-जागना होता, आहार विहार का नियम प्राकृतिक नियमानुसार मौसम व शरीर की प्रकृति के अनुसार होता और हमारे हिस्से में एक निरोग-स्वस्थ जीवन होता है। लेकिन हम अस्त व्यस्त जीवन चर्या व असयंमित जीवनयापन करते हैं और दुर्बलता व रोग को निमंत्रण देते हैं।

समय सम्बन्धी प्रबन्धन के लिए कुछ बिन्दु :- एक दिन-रात में 24 घण्टे होते हैं-इनमें से अधिकतम 7 घण्टे सोने के व 3 घण्टे नहाना-धोना, शौच आदि से निवृत्त होना, भोजन व समाचार पत्र पढना आदि में व्यय समझें तो शेष 14 घण्टे हमारे पास बचते हैं। इनकी दैनिक समय सारिणी इस प्रकार बनाई जाये कि समय एक मिनट भी व्यर्थ नष्ट न होने पाये। किसी से मिलने का समय माँगा है तो समय पर पहुँचें, निर्धारित समय से फालतू समय न मिलने जायें न उसका समय लेवें और न ही मिलने आयें उन्हें देवें। प्रात: 5 बजे निश्चित रूप से जग जायें और रात को 10 बजे निश्चित रूप से सो जायें। सुबह-शाम भ्रमण व खेल का समय सुनिश्चित करें। खान-पान समय पर करें व संयम बरतें। गाड़ी, बस, रेल, हवाई, जहाज या किसी मीटिंग-सत्संग-अस्पताल-ऑफिस जहाँ भी जाना हो समय से पहले पहुँचें। व्यर्थ समय बिल्कुल न बितायें।

एक मिनट पहले चिकित्सालय पहुँचकर किसी के प्राण बचाये जा सकते हैं जबकि एक मिनट विलम्ब करने पर किसी के प्राण गँवा भी सकते हैं। समय को हम व्यर्थ में नष्ट करते हैं तो समय हमें नष्ट कर सकता है। परीक्षा या साक्षात्कार की समय पर तैयारी नहीं करके कल पर टालने वाले तब पछताते हैं जब पेपर (प्रश्न पत्र) हाथ में आना है तो उसे पुन: पुन: पढते रहते हैं लेकिन उत्तर पुस्तिका पर कलम नहीं चल पाती या साक्षात्कार के समय प्रश्नकर्ता को उत्तर देते समय जुबान नहीं खुल पाती।

फिर पछताने से कुछ हाथ लगने वाला नहीं है। अत: कबीर जी के इस दोहे को हमेशा हृदय पटल पर रखना चाहिए-

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में परलय होएगी फिर करेगा कब।।

मानव कमजोर मिट्टी से लिपटा एक खोखला मन लिए, उसी घोंघे का एक बेसिरपैर का मस्तिष्क लिए कितने क्षण चलेगा? वह टिक नहीं सकता एक क्षण, एक पल। वह साहस, वह आशा, दो को समेट वह संसार में डूबता, उतराता, आनन्द उपभोग करता, निराशा के थपेड़ों से चाह कर भी पिटता, कष्ट सहता, मरता, कटता, द्वेष, अनाचार, दंभ, पाखण्ड, कुकर्मों में लिपटा, स्वेच्छा, सदाचार, प्रेम, मोह, ईश्वर, प्रकृति, धर्म, मोक्ष के भव्य भवनों और सपनों में सोता-जागता किसी प्रकार अपनी निर्बल काया, मन और प्राण लिए डगमगाता, लड़खड़ाता, कभी स्थिर, कभी अस्थिर, कभी दार्शनिकता के प्रकोप में यह भी भूलकर किसी अन्य प्रकार से संतोष पाता इति तक जा पहुँचता है। तब जीवन के तिक्त और मधुर क्षण लगते सब एक 'समान' हैं।

– यादव चन्द्र

अपनी बात

कामनाएँ, वासनाएँ हमारे ही मन की हैं, किसी अन्य ने हम पर नहीं थोपी हैं। इन सारी दौड़ का खेल हमारा ही है। हम जिस दिन चाहें, इन्हें समेट लें। लेकिन तभी समेट सकते हैं जब इस खेल को समझ जाएँ और जाग जाएँ। अन्यथा धन, पद सम्पत्ति आदि में ही उलझे रहेंगे।

भर्तृहरि के जीवन का उल्लेख है। राज्य छोड़ दिया। राज्य ऐसे ही नहीं छोड़ दिया था, पड़ी परिपक्वता से छोड़ा था, जान-समझकर छोड़ा था। भोगा था जीवन को और जीवन के भोग से जो पीड़ा थी और जीवन के भोग में जो व्यर्थता पाई थी, उसके कारण छोड़ा था। लेकिन छोड़ते-छोड़ते भी धुएं की कोई रेखा भीतर रह गई होगी।

जीवन जटिल है। पर्त दर पर्त अज्ञान है। एक पर्त पर छोड़ देते हैं, दूसरी पर्त पर प्रकट होना शुरू हो जाता है। सब छोड़कर संन्यस्त होकर जंगल में भर्तृहरि बैठे हैं, अपनी गुफा में। एक पक्षी ने गीत गुनगुनाया, आँख खुल गई। पक्षी को तो देखा ही देखा राह पर पड़ा एक चमकदार हीरा दिखाई पड़ा। अनजाने कोने से, अचेतन की किसी पर्त से जरा-सा लोभ सरक आया, हल्का-सा झोंका पता भी न चले। भर्तृहरि को ही पता चल सकता है जो कि जीवन को समझकर बाहर आया था। जरा-सा कंपन हो गया। लो हिल गई भीतर-उठा लूँ। फिर थोड़ी हंसी भी आई। इससे भी बड़े-बड़े हीरे-जवाहरात छोड़कर आया और अब भी उठाने का मन बना है। बहुत कुछ था, बड़ा साम्राज्य था। यह हीरा उनके सामने कुछ भी नहीं है। ऐसे हीरों के ढेर थे, वह सब छोड़ आया और आज अचानक इस साधारण से हीरे को राह पर पड़ा देखकर मन में यह बात उठ आई।

मगर भर्तृहरि बड़ा सचेत, जागरूक व्यक्तित्व है। पहचान लिया, पकड़ लिया, होश में आ गया कि यह क्या बात हुई। और जब यह मन में मंथन चलता था, मन में विश्लेषण चलता था कि लोभ कहाँ से उठ आया, क्षण भर पहले नहीं था, आँख बन्द थी, ध्यान में लीन था, कहाँ से किस पर्त से आया? बाहर से तो नहीं आया? हीरा तो नहीं भेज रहा है यह लोभ? इसी विश्लेषण में लगे थे, तभी देखा कि दो घुड़सवार दोनों तरफ से राह पर आ गए हैं और दोनों की नजर एक साथ ही हीरे पर पड़ गई। दोनों की तलवारें बाहर निकल आई। दोनों सैनिक हैं। दोनों ने तलवारें हीरे के पास टेक दी और कहा कि पहले नजर मेरी पड़ी, तो दूसरे ने कहा-तुम गलत बोल रहे हो, पहले नजर मेरी पड़ी। इसका निर्णायक तलवार के सिवाय और कोई हो नहीं सकता। दोनों को पता नहीं कि एक तीसरा व्यक्ति गुफा में बैठा देख रहा है। तलवारें चल गई। क्षणभर पहले दोनों जीवित थे, क्षण भर बाद दोनों की लाशें पड़ी थी। हीरा अब भी अपनी जगह पर था न रोया, न चिल्लाया, न चिंतित, न बेचैन। जैसे कुछ हुआ ही नहीं है। हीरे को क्या हुआ? लेकिन भर्तृहरि को बड़ा बोध जागा। हीरा अपनी जगह ही पड़ा रहेगा, हम आएंगे और चले जाएंगे, हम चलेंगे संसार में और विदा हो जाएँगे। हीरे हमारे लिए पछताएंगे नहीं। न तो विदा देते समय एक आँसू उनकी आँखों में झलकेगा, न हमें देखकर वे प्रसन्न हैं। यह सब तो अपने ही मन का खेल है। हम ही अपनी कामनाओं को कहीं न कहीं उलझाए रखते हैं।

यह देखकर भर्तृहरि ने फिर आँख बन्द कर ली। इस घटना से भर्तृहरि को बहुत बोध हुआ। सब पड़ा रह जाएगा। न हम लेकर आए थे, न हम कुछ लेकर जाएंगे, लेकिन हमारा मन ही बड़े सपने सजा लेता है, बड़ा इन्द्र धनुष फैला लेता है। मन संसार है, कामना का निर्माता है, स्रष्टा है। गंभीरता से चिन्तन करें और मन की आसक्ति को समझकर लिप्तता त्याग सकें, ऐसी प्रार्थना करें।

❖

हुकुम सिंह कुम्पावत (आकडावास, पाली)

शिव ज्वैलर्स

विश्वसनीयता में एक मात्र नाम

22/22 कैरेट हॉलमार्क आभूषण,
न्यूनतम बनवाई दर पर

शुद्ध राजपूती आभूषण (बाजूबन्द, पूछी, बंगडी, नथ आदि)
तैयार उपलब्ध एवं ऑर्डर से भी तैयार किये जाते है।

विशेषज्ञ :- सोने व चाँदी की पायजेब, अंगूठी, डायमण्ड, कुन्दन के आभूषण, बैंकॉक आईटम्स आदि

जी-1, सफायर कॉम्पलेक्स, जैन मेडिकल के सामने,
खातीपुरा रोड़, झोटवाड़ा, जयपुर
मो. 7073186603, 8890942548

मई, सन् 2021
वर्ष : 58, अंक : 05

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2020-22

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान् ....

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह